अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की मासिक पत्रिका

वर्ष : 53 अंक : 4 चैत्र-वैशाख वि.सं. 2083 अप्रेल, 2026 मूल्य : अठारह रुपये पृष्ठ-28 RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

गांधीवादी चिंतक बालविजयजी का निधन

प्रख्यात गांधीवादी चिंतक और विनोबा परंपरा के अग्रणी कर्मयोगी बालविजय का 18 मार्च को पवनार आश्रम में निधन हो गया। वे पिछली 26 फरवरी को ही शतायु हुए थे। उनका जीवन अत्यंत सादगीपूर्ण था। वे कर्म में निरंतर सक्रिय रहते हुए भी भीतर से पूर्णतः अनासक्त रहे। सेवा, त्याग और समर्पण उनके व्यक्तित्व की पहचान थे। उनका सम्पूर्ण जीवन समाज सेवा, अहिंसा और ग्रामस्वराज के लिए समर्पित रहा।

महाराष्ट्र के भंडारा जिले में 26 फरवरी 1926 को जन्मे बालविजय ने बनारस हिंदू विश्वविद्यालय से विज्ञान विषय में एमएससी की शिक्षा प्राप्त की। वे 1953 में बिहार में चल रही आचार्य विनोबा भावे की भूदान यात्रा के संपर्क में आए। विनोबा ने उसे नया नाम दिया 'बाल विजय'।

उनका जयपुर से भी लंबा नाता रहा, वे अनेक बार यहां आये। उन्होंने आचार्य विनोबा भावे के साथ देशभर में पदयात्राएं कीं और भूदान, ग्रामदान, संपत्तिदान तथा सर्वोदय जैसे विचारों को समाज में स्थापित करने का कार्य किया। वे विनोबा के निजी सचिव बने और 15 नवंबर 1982 को विनोबा जी के ब्रह्मनिर्वाण तक उनके साथ रहे। आचार्य बालविजयजी का जीवन केवल खादी तक सीमित नहीं था। असम में जब जातीय हिंसा भड़की, तब उन्होंने वहां जाकर संवाद और विश्वास का वातावरण बनाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। सन् 1985 में उन्होंने पवनार स्थित विनोबा समाधि से दिल्ली के राजघाट तक प्रबोधन पदयात्रा निकाली। सन् 1987 में पश्चिम बंगाल में भूमि अधिग्रहण के विरोध में उन्होंने गंगासागर से बांकुड़ा तक पदयात्रा कर लोगों में जागरूकता फैलायी।

उनकी सबसे महत्वपूर्ण यात्रा 'जयजगत मैत्री यात्रा' रही, जो 2 अक्टूबर 1994 से 2 अक्टूबर 1997 तक चली। यह यात्रा अरुणाचल प्रदेश के तवांग से शुरू होकर पूरे देश और नेपाल से गुजरते हुए सेवाग्राम में समाप्त हुई। लगभग 1 लाख 20 हजार किलोमीटर की इस यात्रा में उन्होंने करीब 4000 ब्लॉकों में संवाद स्थापित किया और हजारों युवाओं को अहिंसा और सामाजिक परिवर्तन के लिए प्रेरित किया।

अहिंसा और शांति के प्रति उनके योगदान को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी मान्यता मिली। संयुक्त राष्ट्र संघ द्वारा जिनेवा में आयोजित 'विनोबा और अहिंसा' विषय पर व्याख्यान देने के लिए उन्हें आमंत्रित किया गया। मध्यप्रदेश शासन ने वर्ष 1998 में उन्हें 'महात्मा गांधी अवार्ड' से सम्मानित किया। इसके अतिरिक्त उन्हें 'महाप्रज्ञ अहिंसा प्रशिक्षण अवार्ड' भी प्रदान किया गया। उन्होंने अपने जीवन में प्राप्त सभी पुरस्कार और सम्मान राशि समाज सेवा के कार्यों के लिए समर्पित कर दी। आचार्य बालविजयजी ने संत विनोबा भावे की प्रसिद्ध मराठी कृति 'गीताई' का हिंदी अनुवाद किया। इसके साथ ही 'विनोबा का ब्रह्मनिर्वाण' पुस्तक की रचना कर उन्होंने विनोबा जी के जीवन और दर्शन को सरल भाषा में प्रस्तुत किया।❑

विनोबा भावे की भूदान यात्रा में

निन्दन्तु नीतिनिपुणा स्तुवन्तु यदि वा,
लक्ष्मी समाविशतु गच्छतु वा यथेष्टं,
अद्यैव मरणमस्तु युगान्तरे वा,
न्यायात् पथःपदं प्रविचलन्ति न धीराः

- भर्तृहरि

चाहे समाज के चतुर एवं नीतिज्ञ जन उनके कार्यों की निन्दा करें अथवा प्रशंसा करें, धन वैभव आये अथवा जायें जाये मृत्यु अभी आ जाये अथवा युगों बाद आये, किसी भी परिस्थिति में धीर-गंभीर मनुष्य न्याय - मार्ग का परित्याग नहीं करते, किसी भी दशा में विचलित होकर गलत कदम नहीं उठाते।❑

समानो मन्त्रः समितिः समानी समानं मनः सहचित्तमेषाम्।
समानं मन्त्रमभिमन्त्रये वः समानेन वो हविषा जुहोमि।।
समानी व आकूतिः समाना हृदयानि वः।
समानमस्तु वो मनो यथा वः सुसहासति।। ऋग्वेद

अनौपचारिका

समकालीन शिक्षा-चिन्तन की पत्रिका

वर्ष : 53 अंक : 4 चैत्र-वैशाख वि.सं. 2083 अप्रेल, 2026 मूल्य : अठारह रुपये

क्र म

वाणी

3. भर्तृहरि

संपादकीय

5. नैतिकता दिखावे का नहीं आचरण का प्रश्न

लेख

7. कमजोर होती विश्वविद्यालय की अवधारणा
– डॉ. एस.डी.कपूर

11. खंडित शिक्षा प्रणाली की नकारात्मक गूंज
– कृष्ण कुमार

अभिमत

13. स्कूली शिक्षा में सुधार के लिये दृष्टि आवश्यक
– डॉ. प्रकाश नारायण कल्ला

14. गरीब बच्चों की शिक्षा संवेदनशीलता कहां !
– राजेन्द्र भाणावत

लेख

17. संवेगों का संगम, अनुभूति एवं स्मृति !
– डॉ. श्रीगोपाल काबरा

पर्यावरण

19. पेरू की एक नगरपालिका ने विश्व को दिखाई राह
– धनंजय राय

लेख

21. हमारी धरोहर - हमारे बुजुर्ग
– रणजीत सिंह कूमट

व्याख्यान

23. गांधी ने राजनीति को आध्यात्मिक बनाया
– डॉ. ओ.पी. टाक

अध्ययन

25. रंग-बिरंगे वस्त्र ठीक नहीं
– डॉ. विवेक एस.अग्रवाल

श्रद्धांजलि

27. इतिहास लेखन युग का अवसान
– डॉ. लता व्यास

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7-ए, झालाना डूंगरी संस्थान क्षेत्र,
जयपुर-302004
फोन : 2700559, 2706709, 2707677
ई-मेल : raeajaipur@gmail.com
www.raea.in

संपादक :
राजेन्द्र बोड़ा
प्रबंध संपादक :
दिलीप शर्मा

संपादकीय

नैतिकता दिखावे का नहीं आचरण का प्रश्न

नैतिकता का प्रश्न अपने आप में एक गहरी दार्शनिक और सामाजिक बेचैनी को व्यक्त करता है कि क्या नैतिकता की प्रतिबद्धता सचमुच आचरण का प्रश्न है या केवल दिखावा है? यह सवाल इसलिए उठ खड़ा हुआ है क्योंकि नैतिकता की प्रतिबद्धता आज बड़े पैमाने पर दिखावे में बदल गई है। लेकिन वह पूरी तरह समाप्त नहीं हुई है। असल में सच्ची नैतिकता शोर नहीं करती, जबकि दिखावटी नैतिकता सबसे अधिक प्रचार चाहती है।

नैतिकता आचरण से व्यक्त होती है न कि उद्घोष से। नैतिकता मूलतः निजी आचरण का विषय है। वह तब प्रकट होती है जब कोई देख नहीं रहा होता है। लेकिन आज की सार्वजनिक संस्कृति में नैतिकता को घोषणा-पत्र बना दिया गया है। मंचों से नेता नैतिक उपदेश देते हैं। सोशल मीडिया तो नैतिकता की सीख देने वालों की कोई कमी नहीं दिखती। मगर भाषणों में आदर्श और व्यवहार में अवसरवाद यह विरोधाभास नैतिकता को संदिग्ध बनाता है। सत्ता, बाजार और नैतिकता के बीच कैसा सम्बन्ध है, यह जानना होगा। सत्ता, बाज़ार और नैतिकताये तीनों आधुनिक समाज की वह त्रयी हैं जिनके बीच संबंध न तो सरल है और न ही स्थिर। यह संबंध समय, व्यवस्था और मूल्यों के अनुसार बदलता रहता है। फिर भी इनके आपसी रिश्ते को कुछ बुनियादी बिंदुओं पर समझा जा सकता है।

सत्ता और बाज़ार के सम्बन्ध को लें। सत्ता और बाज़ार का रिश्ता ऐतिहासिक रूप से सहजीवी रहा है। सत्ता बाज़ार को नियम देती हैकानून, कर, लाइसेंस, श्रम-नियम, पर्यावरणीय मानक। बाज़ार सत्ता को संसाधन देता है राजस्व, रोज़गार, आर्थिक वृद्धि और कई बार राजनीतिक समर्थन। लेकिन समस्या तब पैदा होती है जब यह संतुलन टूट जाता है। यदि सत्ता अत्यधिक नियंत्रण करे तो बाज़ार घुटने लगता है। यदि बाज़ार सत्ता को नियंत्रित करने लगे तो लोकतंत्र कमजोर पड़ता है और नीतियां जनहित के बजाय कॉरपोरेट हितों के अनुसार बनने लगती हैं। बाज़ार और नैतिकता के संबंधों को भी देखा जाना चाहिए। बाज़ार का मूल तर्क मुनाफा होता है, नैतिकता उसका स्वाभाविक गुण नहीं होता। बाज़ार पूछता है - क्या बिक सकता है? नैतिकता पूछती है - क्या बिकना चाहिए? जब बाज़ार पर नैतिक अंकुश नहीं होता, तब श्रम का शोषण होता है, उपभोक्ता को भ्रमित किया जाता है, और प्रकृति का अंधाधुंध दोहन होता है। लेकिन यदि बाज़ार को पूरी तरह नैतिकता पर ही छोड़ दिया जाए, तो वह अपनी गतिशीलता खो सकता है। इसलिए नैतिकता बाज़ार का विकल्प नहीं, उसकी मर्यादा है।

सत्ता और नैतिकता के संबंध लोकतान्त्रिक राज्य में महत्व रखते हैं। सत्ता का नैतिक पक्ष सबसे अधिक निर्णायक होता है। बिना नैतिकता के सत्ता केवल 'बल' बन जाती है। और नैतिकता बिना सत्ता के केवल उपदेश बन कर रह जाते हैं। जब सत्ता नैतिक होती है, तब वह बाज़ार को सामाजिक उत्तरदायित्व की ओर मोड़ सकती है जिसमें सबके लिए समान अवसर, कमजोर वर्गों की सुरक्षा, और दीर्घकालिक जनहित होता है। जब सत्ता स्वयं अनैतिक हो जाती है, तब बाज़ार को खुली छूट मिल जाती है, नीति और नैतिकता के बीच खाई गहरी हो जाती है।

तीनों के बीच संतुलन आवश्यक है। आदर्श स्थिति में सत्ता नियामक हो, मालिक नहीं। बाज़ार साधन हो, साध्य नहीं। नैतिकता मार्गदर्शक हो, बाधा नहीं। यह संतुलन तभी संभव है जब नागरिक सजग हों, संस्थाएं स्वतंत्र हों, और नैतिकता को निजी नहीं बल्कि सार्वजनिक मूल्य माना जाए।

सत्ता, बाज़ार और नैतिकता के बीच संबंध गहरे, जटिल और अपरिहार्य हैं। सत्ता और बाज़ार बिना नैतिकता के समाज को असमान और अमानवीय बना देते हैं, और नैतिकता बिना सत्ता और बाज़ार के प्रभावी नहीं हो पाती। अंततः प्रश्न यह नहीं है कि इनमें से कौन अधिक शक्तिशाली है, बल्कि यह है कि इन तीनों को किस दिशा में और किसके हित में संचालित किया जा रहा है। सत्ता और बाजार दोनों ने नैतिकता को उपयोगी औज़ार बना लिया है। जब नैतिकता से लाभ है, तब उसका झंडा ऊंचा, जब नुकसान है, तब चुप्पी या तर्कजाल। कॉरपोरेट सामाजिक उत्तरदायित्व, राजनीतिक शुचिता, संस्थागत पारदर्शिताअक्सर ये शब्द व्यवहार से अधिक ब्रांडिंग के हिस्से बन गए हैं।

बौद्धिक और सांस्कृतिक वर्ग की भूमिका की भी चर्चा होनी जरूरी है। लेखक, कलाकार, बुद्धिजीवी, जिनसे नैतिक साहस की अपेक्षा होती है, अक्सर सुविधाजनक नैतिकता का रास्ता चुनते हैं। अन्याय पर चयनात्मक मौन, सत्ता के निकट नैतिक लचीलापन, जोखिम वाले सत्य से दूरी। यह नैतिकता नहीं, बल्कि सुरक्षा–नीति है।

फिर भी नैतिकता जीवित है, वह इसके बावजूद पूरी तरह मृत नहीं है। वह उस कर्मचारी में जीवित है जो रिश्वत नहीं लेता, जबकि ले सकता है, उस पत्रकार में जो दबाव के बावजूद सच लिखता है, उस नागरिक में जो चुप रहने के बजाय सवाल करता है। बस फर्क इतना है कि ये लोग प्रचार नहीं करते, इसलिए दिखते नहीं। नैतिकता की प्रतिबद्धता जब भाषण बन जाए, तो वह दिखावा होती है। जब वह व्यक्तिगत जोखिम लेकर आचरण बने, तब वह मूल्य होती है। आज संकट नैतिकता का नहीं, बल्कि नैतिक साहस का है। और नैतिक साहस कभी भी बहुमत में नहीं होतावह हमेशा अल्पसंख्यक होता है, लेकिन इतिहास उसी से बनता है। व्यवहार में, अनैतिक लोग असामान्य नहीं होते हैं: वे हम ही सही हैं जैसा मानने वाले लोग होते हैं।

लेकिन क्या हो अगर नैतिकता को बचाने की कोई ज़रूरत नहीं हो ? क्या हो अगर आम दिमाग में नैतिकता के नियम और निर्देश, साथ ही दार्शनिकों द्वारा इसे व्यवस्थित रूप से समझने के परिष्कृत प्रयास, सोशल मीडिया पर दुर्व्यवहार के भयावह प्रसार, राजनीतिक बयानबाजी से प्रेरित हिंसा के प्रसार और समकालीन संकटों के व्यावहारिक समाधानों पर सहमत होने में राजनेताओं की अक्षमता को और बढ़ा दिया जाए ?❑

कमजोर होती विश्वविद्यालय की अवधारणा

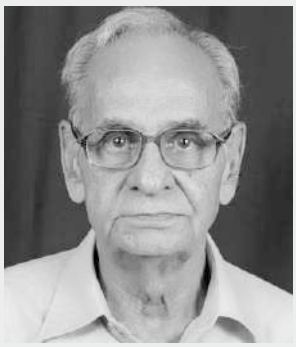

❑
डॉ. एस. डी. कपूर

जयनारायण व्यास विश्वविद्यालय, जोधपुर के अच्छे दिनों में प्रोफेसर रहे डॉ. कपूर के अंग्रेजी आलेख का अनुवाद डॉ. कन्हैयालाल खाँड़पकर ने किया है। डॉ. कपूर का पिछले दिनों निधन हो गया। वे विश्वविद्यालय की अवधारणा की गहरे मर्म की बात कह गये। सं.

❑

जअपने आदर्श स्वरूप में विश्वविद्यालय बौद्धिक ज्ञान, श्रेष्ठता एवं स्वतंत्रता के लक्ष्य संधान पर केंद्रित संस्थान होने चाहिए, जहां विचारों का अबाध रूप से परीक्षण हो। एक शांतिपूर्ण एवं लोकतान्त्रिक माहौल में अभिनव विचार प्रस्फुटित हों। जहां रूढ़िवादिता का नवीन ज्ञान के अलूक में परीक्षण हो और यदि वह बौद्धिक सारतत्व से रहित प्रतीत हो तो उसका अस्वीकरण या संशोधन ही अभिप्रेत होना चाहिए। विश्वविद्यालय की भूमिका का उचित निर्वहन सांस्कृतिक नैतिकता के वृहत्तर ढांचे में ही संभव है। सोचने की क्षमता को अवरुद्ध करके विश्वविद्यालय की इस भूमिका का निष्पादन नहीं हो सकता। इसके लिये सोच का खुलापन आवश्यक है। जानकारी के परीक्षण एवं प्रसार के लिये विश्वविद्यालय के बुनियादी कार्य पर रोक लगा डी जाय या उसके मार्ग में खुले या गुप्त अवरोध खड़े कर दिए जाएं तो उसकी परिणती विश्वविद्यालय की निरर्थकता व अवसान में होगी।

मुझे आश्चर्य है कि आदर्श स्थितियां हमारे देश में कभी विद्यमान थी पर निश्चित रूप से वर्तमान समय वे दिखायी नहीं पड़तीं। ऐतिहासिक दृष्टि से आदर्श विश्वविद्यालय की कसौटी पर हमारे देश के दो पुराकालीन विश्वविद्यालय तक्षशिला और नालंदा ही खरे उतरते हैं। नालंदा विश्वविद्यालय को तो हाल ही के वर्षों में पुनर्जीवन प्रदान करने का प्रयास किया गया है। उसे अपनी गुणवत्ता और श्रेष्ठता अभी सिद्ध करनी है।

साम्राज्यवादी ब्रिटिश काल ने उन्नीसवीं सदी में तीन विश्वविद्यालय स्थापित किये। वे मुख्यतः परीक्षाएं आयोजित करने वाली संस्थाएं थीं। नवीन विश्वासों एवं संभावनाओं के द्वार अनावृत्त करने में उनकी कोई रुचि नहीं थी। स्वतंत्र बौद्धिक खोज-बिन और गुणवत्ता की ओर उन्मुखता इन विश्वविद्यालयों के दृष्टिपथ से बाहर की बातएं थीं। उन्होंने इस प्रकार की अभिज्ञता को प्रोत्साहन दिया जो शासक वर्ग को देश का प्रशासन चलाने

में सहायक सिद्ध हो। उनका मुख्य ध्येय भारतीयों का ऐसा वर्ग तैयार करना था जो मैकाले के अनुसार वर्ण और रक्त की दृष्टि से भारतीय हो किन्तु अभिरुचि, अभिमत, नैतिक मान्यताओं व चरित्र की दृष्टि से अंग्रेज हों।

बंकिमचन्द्र ने भारतीयों को दी जाने वाली इस प्रकार की शिक्षा का विरोध किया। संविधान सभा में पंडित नेहरू का प्रसिद्ध भाषण 'नियति से हमारे पूर्वनिर्धारित मिलन' (ट्रिस्ट विद डेस्टिनी) के सूर्योदय के साथ ही हमारे देश में उच्च शिक्षा का स्वरूप भी बदल गया। हमारा मानस सच्चे अर्थों में बंधनमुक्त था। तथा हमारी प्रज्ञा अतीतकालीन व वर्तमानकालीन ज्ञान के साथ निःसंकोच संवाद की स्थिति में थी। विश्वविद्यालय एफ. आर. लेविस के शब्दों में सभ्य संसार के लिये चेतना और मानवीय उत्तरदायित्व के केंद्र बन गये। हमारे नेतृत्व के सम्मुख पश्चिम के प्रतिष्ठित विश्वविद्यालयों के उदाहरण विद्यमान थे, जहां उच्च स्तर पर शोध कार्य हो रहा था। भले ही ऐसे शोध का परिणाम शासकों के राजनीतिक हितों से मेल नहीं खाता था। इसी प्रकार भारतीय नेताओं का भी विश्वास था कि बंधनमुक्त शोध से हमारा मानस आलोकित होगा और अंततः वह समाज की उन्नति में सहायक सिद्ध होगा।

स्वतंत्रता के प्रारम्भिक चार दशकों में ऐसे विचारों को एक लोकतान्त्रिक माहौल में पोषण प्रदान किया गया। परिणामतः विश्वविद्यालयों ने पर्याप्त सुविधाओं की कमी के बावजूद उच्च कोटि के विद्वान व शिक्षक समाज को प्रदान किये। इस प्रकार उभरी गतिशीलता 1990 ई. के दशक तक सतत गतिमान रही, जिसमें देश में घोषित आपातकाल की अल्प अवधि में व्यवधान उत्पन्न हो गया था। उस कालखंड में वरिष्ठ शिक्षाविदों में बेचैनी व्याप्त थी क्योंकि वे देख रहे थे कि शैक्षणिक स्तर में निरंतर गिरावट आ रही थी। बौद्धिक सक्रियता निस्पंद हो चुकी थी। अपनी जीवनवृत्ति (पेशे) में आगे बढ़ने की होड हावी हो गयी। इस प्रवृत्ति को तथाकथित पड़ के बड़ेपन जैसी सोच से बाल मिला। इसके अलावा विश्वविद्यालय की अवधारणा को अक्षत रखने के लिये कोई प्रयत्न भी दिखाई नहीं दे रहे थे। दूसरी ओर एक सर्वव्यापी दोषदर्शिता व्याप्त थी। विश्वविद्यालयों को बाहरी दुनिया से पृथक् करने वाली अकादमिक भित्तियां ढह रहे थीं।

जैसा कि साऊल बेलौ ने अमरीकी शिक्षण के संदर्भ में लिखा है, विश्वविद्यालयों के भीतर कार्यरत लोग अपनी इच्छाओं व प्रेरक हेतुओं के संदर्भ में विश्वविद्यालय से बाहर के लोगों के हमराह थे। वे विश्वविद्यालय में अतिक्रमण करने वाली बाहरी संसार की शक्तियों के प्रभामंडल से आवृत्त हो चुके थे। उनका रुझान ज्ञानोंदीप्ति की ओर नहीं अपितु सांसारिक वस्तुओं की ओर उन्मुख था। उनके लिये अधिक आय एक जगह छोड़ कर दूसरी जगह जाने के लिये प्रेरित करने हेतु किसी अभिनव विचार की अपेक्षा अधिक सशक्त कारक था। संस्था के प्रति प्रतिबद्धता अतीतकालीन गाथा हो चुकी थी। यह सब कुछ इसके बावजूद घटित हो रहा था कि उन्हें न केवल अच्छा वेतन मिल रहा था अपितु पदोन्नति के लिये भी अच्छे अवसर विद्यमान थे। वे एक रुग्णता से ग्रस्त थे जो उन्हें अपने परिवेश की चेतना से स्पंदित होने से वंचित कर रही थी। लूसियन गोल्डमेन ने इसे एक यथार्थ के साथ मानवीय स्थिति क्र अनमेलपन की संज्ञा दी है, जो स्वयं को अभिव्यक्त करने और विकसित होने का अवसर नहीं देती।

निःसंदेह ऐसे विद्वान अभी हमारे बीच विद्यमान थे; विश्वविद्यालय के आदर्शों के प्रति जिनकी निष्ठा अक्षुण्ण थी पर उनका मुकाबला ऐसे लोगों से था जिनका ज्ञानार्जन से कोई वास्ता नहीं था। जब ज्ञानार्जन विश्वविद्यालयों की प्राथमिकताओं की तुला पर निचले स्तर पर हो, उस स्थिति में विश्वविद्यालय बिरादरी के आंगिक स्वरूप में बदलाव होना लाजमी है। ऐसी स्थिति में विश्वविद्यालय की गतिविधियों का मूल तत्व विद्वता से छिटक कर प्रशासन पर केंद्रित हो जाता है जिसका प्रयोजन विद्वता और ज्ञानार्जन को परिपुष्ट करना नहीं होता। ज्ञानार्जन के सर्वव्यापी अध्यवसाय में भागीदारी के स्थान पर प्रशासन विश्वविद्यालय की गतिविधियों का एकमात्र नियामक बन जाता है। चूंकि कुलपति और दूसरे अधिकारीगण सरकार द्वारा नियुक्त किये जाते हैं; फलतः वे विश्वविद्यालय के मूल-भूत क्रियाकलापों को अक्षुण्ण नहीं रख पाते। उनका एकमात्र ध्येय विश्वविद्यालय परिसर में शांति बनाये रखना, शैक्षणिक गतिविधियों की अनदेखी कर परीक्षाएं आयोजित कराना और समय पर परीक्षा परिणाम घोषित करने तक सीमित हो गया है।

ज्ञानप्राप्ति और मूल्यांकन की सम्पूर्ण व्यवस्था संदेह के घेरे में आ गई है। केवल विश्वविद्यालयों तक सीमित न रह कर जीवन के सभी पहलू इस व्याधि से ग्रस्त हो गये हैं। प्रशासनिक व अकादमिक मसलों पर निर्णय राजनेताओं के आदेशानुसार लिये जाते हैं। ऐसे माहौल में प्रोफेसर वी. वी. जॉन जैसे कुलपति पाना अत्यंत दुर्लभ है; जिन्होंने मुख्यमंत्री के आदेशों के सम्मुख नतमस्तक होने के बजाय त्यागपत्र देना श्रेयस्कर समझा। ऐसे हालात में असहमति पर सर्वाधिक घातक प्रहार होता है। सामान्य असहमति, जो विश्वविद्यालय जीवन का आधार स्तम्भ है, उसे एक गंभीर अपराध की श्रेणी में रख दिया जाता है। परिणाम स्वरूप विश्वविद्यालय में अकादमिक क्षेत्र नैतिक एवं शैक्षणिक अस्पष्टता से आच्छादित हो जाता है।

विश्वविद्यालय संस्कृति अब अपनी तेजस्विता खो चुकी है, फलतः विश्वविद्यालय बाज़ार की ताकतों एवं विवेक विहीन राजनीतिक वाचालता के प्रहार से पीड़ित है। अब उनका संचालन लोकतान्त्रिक मूल्यों से नहीं अपितु जोड़-तोड़ व चालबाजी से होता है। अभिनव संस्कृति के दो मुख्य लक्षण हैं और वे लक्षण इस बात के प्रतिबिंब हैं कि समाज में व्यापक तौर पर क्या हो रहा है। विश्वविद्यालयों पर आक्रामक के रूप में दो घटक कार्यरत हैं और वे हैं – द्वैध वृत्ति (असमंजस की स्थिति) एवं कोई कदम उठाना अनिश्चित काल के लिये स्थगित हो जाता है। मुझे एक कुलपति से जुड़ा वाकया स्मरण है, जो एक बार परीक्षा केंद्र का मुआयना करने के लिये आये। वहाँ उन्होंने एक परिवीक्षक को एक परीक्षार्थी से पुस्तक छीनने के लिये उलझते देखा, जिससे वह नकल कर रहा था। एक चतुर प्रशासक के रूप में कुलपति ने परिवीक्षक और परीक्षार्थी की पीठ पर हाथ रखा और कहा इट इज़ नॉट डन (ऐसा नहीं करते) और परीक्षा हॉल से बाहर निकाल गये। परिवीक्षक इसी गतागम में फंस गये कि कुलपति के कहने का आशय क्या है? क्या वे परीक्षार्थी को नकल नहीं करने का कह रहे थे या वे परिवीक्षक को से कहना चाहते थे कि वे परीक्षार्थी को नकल करने से नहीं रोकें।

केवल इतना ही नहीं। यहाँ तक कि शैक्षणिक पदों पर नियुक्ति योग्यता के आधार पर नहीं की जाकर अलग मापदंडों को ध्यान में रख कर की जाती है। कुछ समय पहिले राजस्थान के एक विश्वविद्यालय में साक्षात्कार प्रक्रिया का मखौल उड़ाते हुए एक ही दिन में दो सौ उम्मीदवारों का साक्षात्कार लिया गया था। ऐसी बेतुकी चयन प्रक्रिया के विरुद्ध कोई कदम नहीं उठाया गया। ऐसी अन्यायपूर्ण एवं अनुचित कार्यवाही के खिलाफ सभी लोग न्यायालय के द्वार पर दस्तक नहीं दे सकते और जो ऐसा करने का साहस जुटाते हैं, उन्हें भारी वित्तीय एवं अन्य दबाव झेलने पड़ते हैं। विडंबना की इंतिहा तो यह कि इस सबके बावजूद चयन प्रक्रिया में निष्पक्षता का मुखौटा लगाया जाता है। यह असमंजस कोई अलग-थलग नजीर नहीं है अपितु समाज के वृहत्तर वैचारिक परिदृश्य का हिस्सा है जहां महत्वपूर्ण मुद्दों को उनकी तार्किक परिणति तक नहीं पहुंचने दिया जाता। वे मझधार में ही छोड़ दिए जाते हैं। यह असमंजस विभिन्न मसलों पर कोई स्पष्ट रुख अपनाने से बचने के लिये एक धूर्ततापूर्ण चाल है। मुद्दों को समितियों व जांच के अंतहीन मकड़जाल में उलझा दिया जाता है। इतना दीघसूत्री रवैया अपनाया जाता है कि वे मसले अपनी प्रासंगिकता व ताकत खो देते हैं। मौन; स्थगन व निष्क्रियता का दूसरा प्रकार है। दामोलकर, कलबुर्गी और पंसारे जैसे बुद्धिजीवियों की हत्या के ज्वलंत मामलों में सरकार की ओर से कोई प्रतिक्रिया सामने नहीं आई। जबकि ये तीनों बुद्धिजीवी तर्कसंगत एवं लोकतान्त्रिक चिंतन का प्रतिनिधित्व करते थे। विद्वानों को ऐसे मसलों पर लिखने की सलाह डी जाती है जो विद्रोही तेवर वाले नहीं हों क्योंकि वे कृत्रिम रूप से सृजित अवस्था में व्यवधान उत्पन्न करते हैं। अवदशा की ओर फिसलन को रोकना राष्ट्र की नियति के मार्गदर्शक नेताओं के लिये सर्वाधिक चुनौतीपूर्ण कार्य है।

यदि उच्च शिक्षा को विच्छिन्न होने से बचाना है तो लिखित और अलिखित दोनों कानूनों का दृढ़ता से पालन होना चाहिए। सार्वजनिक वित्त से पोषित विश्वविद्यालयों को सशक्त बनाना अत्यावश्यक है। नियुक्तियों पर नियंत्रण और बंधनमुक्त शोध कार्य भी अपरिहार्य है। इस मामले में छल-कपट, विलंबन आदि के लिये कोई गुंजाइश नहीं है। यह बात निःसंदेह महत्वपूर्ण है कि वेमूलाएक दलित था किन्तु यह तथ्य अधिक महत्व का है कि वह सत्ता अधिष्ठान की विलंबकारी कार्यशैली के फलस्वरूप आत्मघात जैसा अतिवादी कदम उठाने को बाध्य कर दिया गया था।

विश्वविद्यालयों की विश्वसनीयता की पुनर्स्थापना संभव हो सके इसके लिये पहिले एक दीर्घकालीन योजना बनाना आवश्यक है। इस संदर्भ में विश्वस्तरीय बीस विश्वविद्यालयों की स्थापना का शगूफ़ा किसी काम का नहीं है। विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय किसी जादू की छड़ी से नहीं बन जाते। वे तो शोध एवं विशिष्टता की एक दीर्घ परंपरा के प्रतिफलन होते हैं। साथ ही विश्वविद्यालय की अवधारणा को सशक्त बनाना आवश्यक है। यह अकारण नहीं है कि संसार के सौ श्रेष्ठ विश्वविद्यालयों में हमारे देश का कहीं स्थान नहीं है और न ही उन्हें विश्वस्तरीय विश्वविद्यालय का अभिधान प्राप्त है। हमारे विश्वविद्यालय जिन समस्याओं व हालात से जूझ रहे हैं उनके निराकरण के लिये कोई ठोस प्रयत्न न करके केवल शब्दाडंबर से सजी बड़ी-बड़ी योजनाओं की घोषणा करना घोर विपदा एवं अनर्थ को आमंत्रण देना है। विश्वविद्यालयों के शेखीबाज कर्ता-धर्ताओं की कारगुजारियों के लिये तो इतना ही कहना पर्याप्त होगा कि –

तू एक जर्रा बुलंदी को छूने निकला था/हवा ने रुक कर जमीन पर पटक दिया तुजे।।❑

मुखिया की पुकार, मुझे मेरे वोटरों से बचाओ

जर्मनी के एक गांव में मुखिया लोगों से अपील कर रहा है कि प्लीज मुझे वोट मत दो, लेकिन गांव वालों को यह मंजूर नहीं है. असल में मुखिया जी ने तो चुनाव भी नहीं लड़ा, फिर भी आधे लोगों ने उन्हीं के नाम पर वोट डाल दिया।

जर्मनी के दक्षिणी प्रांत बवेरिया में पिछले हफ्ते स्थानीय चुनाव हुए।

गांव में एक रेलवे स्टेशन भी है। शीफर पेशे से रेलवे ड्राइवर हैं और इस समय इंजनों की देखभाल करने वाली टीम के इंस्पेक्टर हैं। मिटेल सिन के गांव के मुखिया, जिसे जर्मन में बुर्गरमाइस्टर और अंग्रेजी में मेयर कहते हैं, इस मानद पद है और इस काम के लिए उन्हें कोई तनख्वाह नहीं मिलती है। पिछले तीन साल में डिर्क शीफर ने महसूस किया कि फुल टाइम नौकरी करना और गांव का मुखिया होना आसान काम नहीं है।

इसी प्रसिद्ध गांव के मुखिया डिर्क शीफर ने इस बार के चुनाव में उम्मीदवार नहीं बनने का फैसला किया। उनकी जगह लेने के लिए बवेरिया की सत्ताधारी पार्टी सीएसयू, विपक्षी एसपीडी और दलगत राजनीति से स्वतंत्र नागरिकों के गठबंधन ने मिलकर एक उम्मीदवार खड़ा किया। दिक्कत ये हुई कि वे अकेले उम्मीदवार थे. स्थानीय चुनाव के नियमों के हिसाब से चूंकि कून अकेले उम्मीदवार थे, मिटेलसिन के मतदाता मतपत्र पर अपनी पसंद के एक उम्मीदवार का नाम डाल सकते थे।

चुनाव कानून के अनुसार यदि बैलट पेपर पर अधिकतम एक उम्मीदवार हो तो मतदाता कलम से अपना एक सुझाव लिख सकते हैं। और फिर फैसला उन सुझावों के बीच होता है।

टिरलाचिंग के मुखिया चुनाव नहीं लड़ना चाहते थे। कोई और भी उम्मीदवार नहीं था। बैलट खाली था। मतदान हुआ और मतदाताओं ने अपनी पसंद के उम्मीदवारों के नाम बैलट पर लिखे। मौजूदा मुखिया का नाम 68 फीसदी लोगों ने बैलट पर लिखा. उनकी भारी जीत हुई और उन्होंने मुखिया बने रहना मान भी लिया।

उम्मीदवार चुनाव न लड़े तो फिर क्या पहले तो शीफर ऊहापोह में थे कि उम्मीदवार न होने के बावजूद इतना बड़ा समर्थन। बैलट पर कून के अलावा शीफर का भी नाम है। लेकिन काफी सोचविचार करने के बाद शीफर ने फैसला कर लिया है कि वे चुनाव नहीं लड़ेंगे और जीत के बदले उनका प्रचार अभियान ये चल रहा है कि प्लीज मुझे वोट मत दो।

जर्मनी के चुनाव इतिहास में पहले कभी ऐसा हुआ है या नहीं, ये रिसर्चर बाद में बताएंगे। फिलहाल फ्रैंकफर्ट और वुर्त्सबुर्ग के बीच स्थित मिटेलसिन गांव हर हाल में एक इतिहास तो बनाने जा ही रहा है।

–महेश झा

रेडियो जर्मनी की हिन्दी सेवा के सीनियर एडिटर

खंडित शिक्षा प्रणाली की नकारात्मक गूंज

❑

कृष्ण कुमार

एनसीईआरटी के पूर्व निदेशक ने इस आलेख में सरकारी और प्राइवेट हायर एजुकेशन के बीच की बड़ी खाई का प्रमुख मुद्दा उठाया है। सं.

❑

स्कूल क्लासरूम में क्लोज्ड-सर्किट टीवी (सीसीटीवी) कैमरे लगने से बहुत पहले, माइकल एप्पल रोज़ाना पढ़ाने के रहस्य को बताने के लिए ब्लैक बॉक्स का इस्तेमाल एक उदाहरण के तौर पर करते थे। मुझे उनका उदाहरण तब याद आया जब एक स्टूडेंट ने मुझे बताया कि उसकी टीचर ने हाल ही में जाति व्यवस्था को एक जेनेटिक क्लासिफिकेशन के तौर पर समझाया था। इस टीचर के अनुसार, ऊंची जाति के लोग इसलिए दबदबे वाली स्थिति में रहे हैं क्योंकि वे जेनेटिकली बेहतर हैं और निचली जातियों की तुलना में ज़िंदा रहने के लिए ज़्यादा फिट हैं। जब एक स्टूडेंट ने बीच में आकर बी.आर. अंबेडकर के जाति की जेनेटिक थ्योरी को नकारने का ज़िक्र किया, तो टीचर ने जवाब दिया कि अंबेडकर साइंटिस्ट नहीं थे।

रोज़ाना पढ़ाने के रहस्यमयी ब्लैक बॉक्स में झांकने से इस बात का कोई सुराग नहीं मिलता कि इस टीचर के बारे में भारतीय समाज की समझ को बेहतर बनाने के लिए क्या किया जा सकता है। हम अंदाज़ा नहीं लगा सकते कि उन्होंने जाति जैसे अच्छी तरह से रिसर्च किए गए विषय पर कौन सी किताबें पढ़ी हैं। शायद हम उन किताबों के बारे में अंदाज़ा लगा सकते हैं जो उन्होंने नहीं पढ़ी हैं या जिनके बारे में सुना नहीं है। पूरी संभावना है कि उन्होंने कोई किताब नहीं पढ़ी है, और जाति व्यवस्था के बारे में उनके विचार सिर्फ़ इस आम सोच को दिखाते हैं कि जाति के ऊंच-नीच की समस्या एक कॉलोनियल मिथक है।

हमारे पब्लिक हायर एजुकेशन सिस्टम में, कोर्स इवैल्यूएशन का कोई प्रावधान नहीं है। पश्चिमी दुनिया में, जिसकी नकल करने और मुकाबला करने की हमारी व्यवस्था अब ज़ोर-शोर से कोशिश कर रही है, कोर्स कंटेंट और टीचरों के ज्ञान को रेगुलर इंटरवल

पर एक इवैल्यूएशन प्रोसेस से गुज़ारा जाता है। अगर भारत में ऐसा कोई प्रोसीजर अपनाया जाता, तो ब्लैक बॉक्स से कई अजीब प्रैक्टिस और आदतें सामने आतीं। अभी के लिए, हमारा एकमात्र सोर्स एक स्टूडेंट है जो हमें बता सकता है कि टीचर क्या जानते हैं और कैसे पढ़ाते हैं।

चूंकि कोई कोर्स इवैल्यूएशन या ट्रांसपेरेंसी पक्का करने वाली कोई दूसरी विधि मौजूद नहीं है, इसलिए पढ़ाने का अनुभव स्टूडेंट की पर्सनल याद तक ही सीमित रहता है। चाहे कोर्स का कंटेंट हो या टीचर ने सामाजिक या सोच से जुड़ा भेदभाव दिखाया हो, यह पब्लिक डोमेन में नहीं आता। इस बड़े संदर्भ में, भेदभाव को रोकने के लिए बनी बहुत बहस वाली ऑफिशियल गाइडलाइंस यूनिवर्सिटी ग्रांट्स कमीशन के हायर एजुकेशन इंस्टीट्यूशंस में इक्विटी को बढ़ावा देने के नियम, 2026 - स्ट्रक्चरल मुद्दों से बचने की एक बेकार कोशिश लगती हैं।

एक बड़ा मुद्दा पब्लिक और प्राइवेट हायर एजुकेशन के बीच का बंटवारा है। पिछले कुछ दशकों में दोनों क्षेत्र बहुत तेज़ी से अलग हुए हैं। कुल मिलाकर, उनके विकास के अलग-अलग रास्ते वही रहे हैं जो पहले स्कूली शिक्षा में देखे गए थे। एक देश के तौर पर, हम एक बहुत ज़्यादा ऊंच-नीच वाले समाज में रहने के आदी थे। संविधान ने बराबरी और सामाजिक न्याय का एक नज़रिया दिया, और बड़े पैमाने पर शिक्षा ने हमें उस लक्ष्य की ओर बढ़ाने का वादा किया।

शिक्षा के अपने वादे को पूरा करने के लिए एक ज़रूरी शर्त कॉमन स्कूलिंग थी, लेकिन यह लंबे समय तक मुश्किल साबित हुई। असल में, अलग स्कूलिंग का मतलब था कि सामाजिक-आर्थिक वर्गों में बचपन के कॉमन या साझा अनुभवों की कमी थी। सिर्फ़ 15 साल पहले, राइट टू एजुकेशन (आरटीई) एक्ट ने प्राइवेट स्कूलों में आर्थिक रूप से कमज़ोर तबके के स्टूडेंट्स के लिए 25 प्रतिशत आरक्षण ज़रूरी करके कॉमन स्कूलिंग की तरफ़ कुछ सीमित कदम उठाए थे। इस नियम ने एक जैसी सोच का एक छोटा सा पुल बनाया।

पब्लिक और पूरी तरह से प्राइवेट हायर एजुकेशन के बीच ऐसा कोई पुल नहीं है। वे जितनी चाहें उतनी फ़ीस लेने के लिए आज़ाद हैं, प्राइवेट यूनिवर्सिटीज़ को रिज़र्वेशन पॉलिसी मानने की कोई कानूनी ज़रूरत नहीं है। जबकि सरकारी विश्वविद्यालयों में कुल मिलाकर रिज़र्वेशन 50 प्रतिशत तक पहुँच रहा है और कुछ राज्यों में यह इससे भी ज़्यादा है प्राइवेट यूनिवर्सिटीज़ पूरी तरह से मेरिट के आधार पर एडमिशन देने का दावा करती हैं। उस बैनर के तहत, वे जितनी चाहें उतनी फ़ीस लेने के लिए आज़ाद हैं, और कुछ तो बहुत ज़्यादा फ़ीस ले रही हैं। इस तरह, मेरिट माता-पिता की पेमेंट कैपेसिटी के हिसाब से चलती है। दूसरी ओर, पब्लिक यूनिवर्सिटीज़ न सिर्फ़ सरकार की रिज़र्वेशन पॉलिसी को मानती हैं, बल्कि बहुत कम फ़ीस भी लेती हैं। कोई हैरानी नहीं कि वे एक अच्छे एजुकेशनल इंस्टिट्यूशन की बेसिक ज़रूरतों की हमेशा कमी के साथ काम करती हैं।

सिस्टम का यह स्ट्रक्चरल बँटवारा एक तरह का भेदभाव है जिसे कोई भी गाइडलाइन ठीक नहीं कर सकती या कम नहीं कर सकती। पब्लिक-प्राइवेट बँटवारे का भेदभाव वाला पहलू दोनों तरह के इंस्टीट्यूशन के बीच साफ़ फ़ाइनेंशियल अंतर से और भी बढ़ गया है। जब आप ऐसे कॉलेजों में जाते हैं जो पूरी तरह से सरकारी फ़ंड पर निर्भर हैं, तो उनकी लाइब्रेरी और लैबोरेटरी रिसोर्स की कमी आपको घूरती है। प्राइवेट इंस्टीट्यूशन और पब्लिक इंस्टीट्यूशन में टीचर-स्टूडेंट का अनुपात भी बहुत अलग है। बड़ी क्लास अब सबसे जानी-मानी पब्लिक यूनिवर्सिटी में भी एक आम कहानी है।

कोई भी इंस्पेक्शन-बेस्ड डेटा, एक्रेडिटेशन ग्रेड, या एग्ज़ाम रिज़ल्ट उस अंतर को नहीं छिपा सकते जो दो तरह के लर्निंग वेन्यू अपने-अपने स्टूडेंट्स को पढ़ाने के अनुभव देते हैं। मौजूदा हालात में, यह सोचना मुश्किल है कि कोई होनहार दलित लड़का या लड़की ज़्यादा फ़ीस लेने वाली प्राइवेट यूनिवर्सिटी के दरवाज़े से अंदर जाएगा। बेशक, कुछ प्राइवेट यूनिवर्सिटी में सब्सिडी वाली फ़ीस और ज़रूरतमंदों के लिए मदद के दूसरे सिस्टम हैं। ये सिस्टम शायद ही उन भारी नुकसानों की भरपाई कर सकते हैं जो निचली जाति और दूसरे पिछड़े बैकग्राउंड के स्टूडेंट्स बचपन और प्राइमरी स्कूल के दिनों से उठाते हैं। प्राइवेट यूनिवर्सिटी के पोर्टल पर कुछ गरीब स्टूडेंट्स की एंट्री, बँटे हुए एजुकेशन सिस्टम की बड़ी, नेगेटिव बातों का किसी भी हाल में जवाब नहीं है। ❑

स्कूली शिक्षा में सुधार के लिये दृष्टि आवश्यक

❑

❑
डॉ. प्रकाश नारायण कल्ला
पूर्व अधिष्ठाता, कृषि संकाय
जगन्नाथ विश्वविद्यालय,जयपुर

राजस्थान में स्कूली शिक्षा की वर्तमान स्थिति यह स्पष्ट करती है कि समस्या केवल संसाधनों की नहीं, बल्कि नीति, क्रियान्वयन और दृष्टि की भी है। स्कूलों की संख्या, नामांकन और सीखने के परिणाम गिरावट के संकेत देते हैं।

अब केवल योजनाओं की घोषणा पर्याप्त नहीं है। आवश्यक है संरचनात्मक, व्यावहारिक और दीर्घकालिक सुधारों की। स्कूलों के विलय की नीति पर पुनर्विचार जरूरी है। मरुस्थलीय, आदिवासी और दूरस्थ क्षेत्रों में नामांकन नहीं, भौगोलिक दूरी को प्राथमिक मानदंड बनाया जाने की जरूरत पहले भी थी और आज भी है। जहां स्कूल बंद हुए हैं, वहां आवासीय या परिवहन-समर्थित व्यवस्था लागू की जानी चाहिए। स्कूल बंद/विलय के निर्णय में ग्राम शिक्षा समितियों को वास्तविक भागीदार बनाया जाना चाहिए।

स्कूल की अनुपस्थिति सीधे ड्रॉप-आउट को जन्म देती है। ड्रॉप-आउट रोकने के लिए स्थानीय-आधारित हस्तक्षेप की जरूरत होती है। ड्रॉप-आउट की समस्या पूरे राज्य में समान नहीं है, इसलिए समाधान भी एक-सा नहीं हो सकता। इसके लिए जिला-स्तरीय ड्रॉप-आउट मैपिंग तैयार की जाना बेहतर होगा। जैसलमेर, बाड़मेर जैसे क्षेत्रों में मौसमी पलायन करने वाले परिवारों के बच्चों के लिए माइग्रेंट चाइल्ड स्कूलिंग सिस्टम अपनाना होगा। ऊँट-चरवाहा, खान-मजदूर, खेतिहर समुदायों के लिए फ्लेक्सिबल स्कूल टाइम चाहिये। कक्षा 6–9 को हाई-रिस्क ज़ोन मानकर विशेष मेंटरशिप दी जाए तो अच्छे नतीजे मिल सकते हैं।

यह समझने की जरूरत है कि ड्रॉप-आउट शैक्षणिक नहीं, सामाजिक-आर्थिक समस्या है।

हमें स्कूल भवन और बुनियादी ढाँचे को आपात सेवा मानना होगा। खस्ताहाल भवन केवल असुविधा नहीं, संवैधानिक अधिकार का भी उल्लंघन हैं। हमें स्कूल इंफ्रास्ट्रक्चर को आपदा प्रबंधन श्रेणी में रखना होगा। यह जान लेना जरूरी है कि जहां छत टपकती है, वहां ज्ञान नहीं टिकता।

शिक्षकों की नियुक्ति से अधिक महत्वपूर्ण है उनकी प्रशिक्षण गुणवत्ता और उनमें प्रेरणा देने की शक्ति। इसके लिये हर शिक्षक के लिए साल में कम से कम एक क्लासरूम-आधारित प्रशिक्षण अनिवार्य हो। वास्तव में अच्छा शिक्षक ही सबसे मजबूत इंफ्रास्ट्रक्चर होता है। सीखने के परिणाम सुधारने के लिए बुनियादी साक्षरता मिशन लाना होगा। मूल्यांकन का ढांचा बदलने की भी जरूरत है। वह केवल परीक्षा-आधारित न होकर सतत आकलन पर आधारित होगा तो बेहतर नतीजे आएंगे। बिना सीखे पास होना शिक्षा की हार है।

तकनीक को सहायक बना सकते हैं मगर वह विकल्प नहीं बन सकती। इसीलिए डिजिटल शिक्षा समाधान है, प्रतिस्थापन नहीं।

समुदाय और अभिभावकों की वास्तविक भागीदारी भी सुनिश्चित करनी होगी। शिक्षा व्यवस्था तब तक मजबूत नहीं हो सकती जब तक समाज उसे अपनी जिम्मेदारी न माने। सरकारी स्कूलों की प्रबंध समितियों को केवल औपचारिक नहीं, निर्णयकारी भूमिका मिले यह जरूरी है। स्कूल समाज से कटे होंगे तो बच्चे भी कटेंगे। इसलिए स्कूलों के साथ समाज की भागीदारी आवश्यक है। स्कूली शिक्षा का सुधार एक योजना नहीं, एक सतत प्रक्रिया होनी चाहिए। यदि शिक्षा को वास्तव में भविष्य का निवेश माना जाए, तो राजस्थान न केवल नामांकन में, बल्कि ज्ञान, कौशल और सामाजिक सशक्तिकरण में भी अग्रणी बन सकता है।❑

गरीब बच्चों की शिक्षा

❑

राजेन्द्र भाणावात

प्रधान मंत्री ने देश के प्रबुद्ध नागरिकों, विशेषकर वरिष्ठजनों, से यह अपील की थी कि वे सरकार के सामाजिक कार्यों जैसे शिक्षा व स्वास्थ्य आदि में अपना सहयोग प्रदान करें। इसी आह्वान से उत्साहित होकर एक स्वैच्छिक संस्था ने वंचित वर्ग की बालिकाओं के साथ काम करने का निर्णय लिया। नतीजा क्या हुआ उसका दुःखद विवरण यह आलेख देता है, जो प्रशासन की शिक्षा के प्रति घोर असंवेदनशीलता भी दर्शाता है। सं.

अंग्रेजी की एक सेवानिवृत्त प्रोफेसर ने अपने कुछ सहयोगियों के साथ मिल कर अपनी पहले तो उन्होंने सरकार द्वारा संचालित समाज कल्याण के आवासगृहों में रह रही बालिआओं को काउंसलिंग और कौशल प्रदान करने का काम किया। इसके बाद उन्होंने ग्रामीण क्षेत्र की एक राजकीय विद्यालय में पढ़ने वाली सातवीं से दसवीं तक की बालिकाओं को विद्यालय समय के बाद अंग्रेजी, गणित, विज्ञान और कंप्यूटर विषय का शिक्षण देने का काम किया। इसके परिणामस्वरूप जो लड़कियां 40-50 प्रतिशत अंक प्राप्त करती थीं वे 80-90 प्रतिशत अंक बोर्ड की परीक्षाओं में ला सकीं। इसी प्रकार का काम इस संस्था की जयपुर की अत्यंत निर्धन परिवारों की लड़कियों के साथ किया। यहां भी बड़े उत्साहवर्धक परिणाम सामने आये। संस्था द्वारा शैक्षिक गुणवत्ता बढ़ाने के साथ ही बालिकाओं में विभिन्न प्रकार के जीवन कौशल भी विकसित किए गए। बालिकाएं अब पूरे आत्मविश्वास के साथ आगे का अध्ययन कर रही हैं।

अपने काम से उत्साहित होकर गत वर्ष इस संस्था ने छोटे बच्चों को गुणवत्तापूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा प्रदान करने की दृष्टि से एक शिक्षण केंद्र प्रारंभ किया। इसमें घरों में काम करने वाली बाइयों, दिहाड़ी मजदूरी करने वाले परिवारों के चार से दस वर्ष के बालक-बालिकाओं को पढ़ाई लिखाई के साथ सर्वांगीण विकास के अवसर प्रदान करने का प्रयास किया। इस काम में कुछ समर्पित शिक्षिकाओं को भी जोड़ा गया, जिन्हें सरकारी शिक्षकों की तुलना में बहुत कम मानदेय दिया जाता है। इस संस्था का संचालन केवल अपने परिचितों और मित्रों से प्राप्त सहायता राशि से ही किया जाता है। इस केंद्र की लोकप्रियता के कारण कईं बच्चों ने सरकारी विद्यालय, जहां मिड-डे मील भी मिलता है, छोड़कर इस शिक्षण केंद्र में प्रवेश लिया। वर्तमान में यहां लगभग 90 बच्चे भर्ती हैं। सहयोगकर्ता समय-समय बच्चों को पौष्टिक व रुचिकर नाश्ता भी देते हैं।

कुछ अभिभावकों के आग्रह पर संस्था के पदाधिकारियों ने इस केंद्र को प्राथमिक विद्यालय में परिवर्तित करने की सोची। कुछ वर्ष पूर्व तक प्राथमिक विद्यालय अर्थात पांच तक की कक्षाओं का संचालन करने के लिए किसी भी प्रकार की मान्यता की आवश्यकता नहीं होती थी। मगर बाद में उसनहैं शिक्षा विभाग से मान्यता प्राप्त करना अनिवार्य कर दिया गया। यह संस्था अपने केंद्र को प्राथमिक विद्यालय के रूप में मान्यता दिलाने डेढ़ वर्ष से असफल प्रयास कर रही है। यह उसी की व्यथा-कथा है।

संवेदनशीलता कहां !

स्वयंसेवी आधार पर चलने वाले केंद्र की प्राथमिक पाठशाला के रूप में मान्यता के लिए जब जयपुर स्थित शिक्षा संकुल में पता किया तो बताया गया कि सारा काम ऑनलाइन होता है और मान्यता के लिए प्रार्थना पत्र पोर्टल पर ही देना होता है। मान्यता की कार्यवाही के लिए कई प्रकार की विस्तृत जानकारियां पोर्टल पर डालनी थी और कई प्रकार के दस्तावेज भी अपलोड करने थे, जैसे किराया अनुबंध, भवन का पीडब्ल्यूडी से अनुमोदित मानचित्र, कमरों की संख्या, शिक्षकों की संख्या एवं संस्था का विस्तृत विवरण आदि। ये सब सूचनाएं पोर्टल पर डाल दी गई। यह कार्यवाही पूरी हो जाने पर यह भ्रम

कि शीघ्र मान्यता का पत्र मिल जाएगा शीघ्र दूर हो गया। सारी औपचारिक्ताऐं पूरी करने के बाद भी कोई प्रगति नहीं हुई और न ही कोई वापसी सूचना मिली। शिक्षा विभाग से भी कुछ भी उत्तर नहीं मिल रहा था। अचानक एक दिन शिक्षा संकुल से एक लिपिक का फोन संस्था के सचिव के पास आया कि आपके द्वारा अपलोड किए गए कोई भी दस्तावेज उपलब्ध नहीं हो रहे हैं, अतः आप किसी के साथ उनकी हार्ड कॉपी भिजवा दें। संस्था के सचिव ने सारे पत्रों और दस्तावेजों की एक प्रति लगाते हुए पूरी पत्रावली शिक्षा संकुल में संबंधित कार्यालय के पास भिजवा दी। इसके बावजूद कुछ समय बाद फिर उसी लिपिक का फोन गया कि पत्रावली में कई सारे दस्तावेज उपलब्ध नहीं है। संस्था की सचिव और अध्यक्ष मेरे निकट के परिचित हैं, अतः मैंने उनकी सहायता करने की दृष्टि से संकुल के संबंधित लिपिक से बात की और उससे मदद करने का आग्रह किया। उसने तत्काल यह स्वीकार कर लिया कि उसके पास सारे दस्तावेज उपलब्ध हो गये हैं। उसने यह भी बताया कि पूरी पत्रावली निदेशालय, बीकानेर को भेजी

जाएगी और वहां से मान्यता का पत्र प्राप्त हो जाएगा।

मुझे अभी तक यह समझ में नहीं आ रहा है कि जब सारी कार्यवाही पोर्टल के माध्यम से ऑनलाइन होनी चाहिये थी तो सारी सूचनाओं की हार्ड कॉपी क्यों मांगी जा रही थी? खैर, जैसा मांगा गया उन्हें दे दिया गया। बाद में शिक्षा विभाग के एक अधिकारी इस शिक्षण केंद्र को देखने भी आये।

बीकानेर स्थित प्राथमिक शिक्षा निदेशालय में पत्रावली पहुंचने के बाद भी जब कई दिनों तक कोई सूचना प्राप्त नहीं हुई तो मैंने अपने स्तर पर इस बारें में जानकारी करने का प्रयास किया। विभिन्न स्तरों पर बात करने के साथ ही निदेशक, प्रारम्भिक शिक्षा से भी आग्रह किया कि वे जयपुर आयें तो इस केंद्र पर अवश्य आयें। मगर कोई असर नहीं हुआ और किसी भी प्रकार के अनुमोदन की सूचना विभाग से प्राप्त नहीं हुई।

कुछ समय बाद पोर्टल पर यह दिखने लगा कि उनको प्रस्ताव में अनेक प्रकार की आपत्तियां है। जैसे भवन का किरायानामा पंजीकृत नहीं है, जबकि नोटरी से सत्यापित किरायानामा प्रस्तुत किया जा चुका था, कमरों की संख्या पर्याप्त नहीं है, जबकि इस भवन में छह कमरे होने की सूचना दी गई थी। कहा गया कि कक्षा के कमरे छोटे हैं। इस संस्था में प्रत्येक कक्षा में 15 से अधिक बच्चों को प्रवेश नहीं देने का निर्णय बताया जा चुका था। आपत्ति थी कि खेलने के लिए मैदान नहीं है। जयपुर शहर में खेलने का मैदान उपलब्ध कराने के लिए कितने लाख रुपयों की धनराशि की आवश्यकता होगी और किसी ऐसी संस्था के द्वारा जो वंचित वर्ग के निर्धन बालक बालिकाओं को लगभग निःशुल्क शिक्षा प्रदान कर रही है, वह कैसे इतनी बड़ी राशि की व्यवस्था करके खेल का मैदान उपलब्ध करा सकती है? इस पर कोई ध्यान नहीं दिया गया कि इस भवन में एक चौक अवश्य है जहां बच्चे उनके लायक कुछ खेल खेल सकते हैं)।

कैसी विडंबना है कि जो प्रशासन एक समर्पित स्वैच्छिक संस्था के उस प्रस्ताव में हर तरह की अड़चन डालने का प्रयास करता है जिसके शिक्षण केंद्र पर पांच शिक्षिकाएं कार्यरत है जबकि अधिकांश राजकीय प्राथमिक विद्यालयों में एक या दो शिक्षक ही होते हैं। सरकार द्वारा संचालित प्राथमिक विद्यालयों को जिन्होंने देखा है वे जानते हैं कि अधिकांश विद्यालय एक या दो कमरों में चलते हैं और बहुत ही गंदगी के वातावरण में संचालित होते हैं। किन्तु जब प्रशासन को किसी संस्था द्वारा संचालित शिक्षण केंद्र को प्राथमिक विद्यालय के रूप में मान्यता प्रदान करने का अवसर मिलता है तो उसके अधिकारी अपनी सारी विद्वता इसी में लगा देते हैं कि कैसे इस काम को न होने दिया जाय। बाद में किसी ने यह भी बताया कि यदि आपके स्कूल का निरीक्षण करने के लिए जो शिक्षा अधिकारी आये थे उनकी ठीक तरह आवभगत की जाती, तो मान्यता मिल चुकी होती। इस कथन में कितनी सच्चाई है, यह कहना तो कठिन है।

इस संस्था के पदाधिकारी प्रारंभ से नैतिक मूल्यों के वाहक रहे है और इसी के आधार पर पूरी समर्पण भावना से काम कर रहे हैं इसलिए उन्हें

यह अनैतिक तरीका कतई मंजूर नहीं था। शायद इसी कारण उन्हें अब तक मान्यता नहीं मिली है और आगे भी मिलने की संभावना कम ही है।

मैंने अपने अनुबहाव के आधार पर पहले ही संस्था को ऐसी मान्यता हेतु आवेदन करने के लिए मना किया था क्योंकि शिक्षा का अधिकार कानून के आने के पश्चात 14 वर्ष तक के किसी भी बच्चे को उसकी आयु के अनुरूप उपयुक्त कक्ष में प्रवेश देना सरकार के लिए अनिवार्य है। अतः 11 वर्ष तक के जो बच्चे इस शिक्षण केंद्र से निकलेंगे उन्हें अपनी आयु के अनुसार चौथी, पांचवीं या छठी कक्ष में प्रवेश लेने का अधिकार होगा और वे आगे चलकर अच्छी शिक्षा ग्रहण कर पाएंगे। इसमें कोई दो राय नहीं कि इन बच्चों का शैक्षणिक स्तर शिक्षण केंद्र के प्रयासों के कारण अन्य विद्यालयों में पढ़ने वाले बच्चों के मुकाबले कहीं बेहतर ही होगा।

यह पूरा विवरण विस्तृत रूप से देने का एक ही कारण है कि सरकार, स्वैच्छिक कार्य करने वालों को यदि प्रोत्साहित न भी करे, तो कम से कम उन्हें हतोत्साहित और प्रताड़ित तो न करे।❑

संवेगो का संगम, अनुभूति एवं स्मृति!

❑

❑

डॉ. श्रीगोपाल काबरा

मानवीय स्नायु तंत्र का नदियों के संगम प्रयाग से तुलना करता चिकित्सा विशेषज्ञ का यह महत्वपूर्ण आलेख प्राचीन भारतीय अध्यात्म और आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का अनोखा मेल दिखाता है। सं.

प्रयाग याने मिलन स्थल – संगम – जल धाराओं का मिलन, नदियों का संगम। पंच प्रयाग हैं। विष्णुप्रयाग, जहां अलकनंदा में धौली गंगा मिलती है; नन्दप्रयाग में नन्दाकिनी का अलकनंदा से मिलन होता है; कर्णप्रयाग में अलकनंदा का पिंडार ग्लेसियर से आई पिंडार नदी से संगम होता है; रुद्रप्रयाग में अलकनंदा का मंदाकिनी से मिलन होता है; और देवप्रयाग में भागीरथी और अलकनंदा के संगम से बनती है गंगा, और फिर प्रयाग राज (इलाहबाद) जहां गंगा, यमुना और सरस्वती का त्रिवेणी संगम होता है।

इसी प्रकार ज्ञानेन्द्रियों, अंतेन्द्रियों और रसायेनेन्द्रियों से आये संवेगों की त्रिवेणी होती है। , जैसा कि कम्प्यूटर में होता है उसी प्रकार इन्द्रियों से आये हर आवेग का संचारण एक 'कोड' के रूप में होता है। कोडेड आवेगों के संकलन से संवेग बनते है, जिनका भी अपना 'कोड' होता है। संवेगों से संवेद बन कर जब मस्तिष्क में नियत केन्द्र में पहुंचने पर डी–कोड हो कर पहचाने जाते हैं और उनकी अनुभूति चेतना में होती हैं। संवेदनाओं का सामुहिक अनुभव 'कोड' हो कर संकलन के लिए स्मृति में भेज दिया जाता है, जिसकी अपनी एक प्रक्रिया होती है।

आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा ज्ञानेन्द्रियां हैं। शरीर की त्वचा से आये स्पर्श, ताप और दर्द संवेगों का मेरूरज्जू की तंत्रिका धाराओं में प्रवाह होता है, जबकि अन्य ज्ञानेन्द्रियों से आये संवेगों के संगम के बाद उनका संवेदों के रूप में आकलन, पहचान और अनुभूति होती है। यह संवेग प्रवाह तीन न्यूरो कोशकीय कड़ी द्वारा होता है। कड़ी की पहली त्वचा कोशिका में

स्थित अति सूक्ष्म नली नुमा डेन्ड्राइट पर इन्द्रियों से इन संवेगों का उद्गम होता है, उसी प्रकार जैसे पहाड़ी झरनों से नदी के उदगम होता है। यह कोशिका मेरूरज्जू में अपनी तरफ की एक कोशिका से मिलन करती है, यह पहला संगम होता है। यह आवेग दूसरी कोशिका के सूक्ष्म नली नुमा एक्सोन से होती हुई दूसरी ओर जाती है – दांएं-बांएं और बांएं-दांएं, और फिर यह धारा, नदी की भांति एक निश्चित ट्रेक्ट के रूप में ऊपर मस्तिष्क की ओर प्रवाहमान हो जाती है।

दूसरी कोशिका मस्तिष्क के थेलामस में स्थित तीसरी कोशिका से संगम करती है। यह दूसरा संगम होता है। तीसरी कोशिका के एक्सोन मस्तिष्क के उस ओर के गोलार्ध में स्थित सेन्सरी कॉर्टेक्स – संवेद केन्द्र – में संवेद पहुचा कर शेष हो जाते हैं। जिस प्रकार सभी नदियां समुंद्र में मिलती है वैसे ही सभी संवेग धारायें आकर अपनी ओर के गोलार्ध में अलग अलग संवेद केन्द्रों में मिल जाती हैं। फिर होता है इस अथाह समुंद्र में इन धाराओं का मिलन जैसे नदियों का संगम। लेकिन संवेद केन्द्रों में पहुचने के पहले इनका संगम थेलामस में होता है जैसे प्रयाग राज में गंगा, यमुना, सरस्वती का।

मांसपेशियों, जोड़ों और रक्त वाहनियों में स्थित दबाव व तनाव-इन्द्रियों (अंतेन्द्रियां – स्ट्रेच रिसेप्टर्स और बेरो रिसेप्टर्स) से आये संवेग मेरूरज्जू और मेरूदन्ड की तीन कोशकीय कड़ी की अपनी धाराओं (ट्रेक्ट्स) में प्रवाहित होते हैं, उन्हें क्रोस करते हैं व अन्य संवेगो से मिलते हैं। ये दो धराओं में विभक्त हो जाते हैं। एक जो चेतन मस्तिष्क तक पहुंचते है,

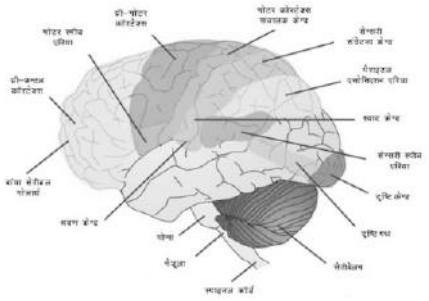

जिनका बोध होता है, चेतना के स्तर पर अनुभूति होती है, और दूसरा जिनका आकलन, पहचान और संग्रहण अवचेतन में ही होता है। रसायनेन्द्रियों (केमोरिस्प्टर्स) से आये संवेगों का मिलन और आकलन अवचेतन में ही होता है। चेतन, अवचेतन और भावनाओं की त्रिवेणी का संगम मस्तिष्क के लिम्बिक लोब होता है। लिम्बिक लोब में ही संवेगों की भावानुभूति होती है। वैसे ही, जैसे त्रिवेणी स्नान से धर्मानुभूति। आध्यात्म की गंगोत्री टेम्पोरल और लिम्बिक लोब ही हैं। पंच प्रयाग की तरह ही पांच ज्ञानेन्द्रियों – आंख, नाक, कान, जीभ और त्वचा – जहां से देखने, संघने, सुनने, चखने (स्वाद) महसूस करने (स्पर्श, ताप, दर्द) के संवेगों की संवेदनाओं के रूप में अनुभूति होती है। बाहरी जगत से सतत आती इन संवेदानोओं की बहुआयामी सामुहिक अनुभूति और स्मृति ही ज्ञान का आधार बनती हैं। आवेग – संवेग – संवेदना – संज्ञान – अनुभूति – अनुभव – स्मृति। दृष्टि से दृष्यों की अनुभूति, स्मृति। श्रवण से शब्द, भाषा, नाद का ज्ञान व स्मृति, बोली, लेखन। त्वचा से आये संवेगों से बाहरी जगत की भौतिक अनुभूति, ज्ञान, स्मृति, परिवेश में शरीर की स्थिति, ज्ञान।

अंतेन्द्रियों से आये संवेगों से स्वयं शरीर का आत्मबोध (बॉडी इमेज, कॉन्शस प्रोप्रियोसेप्सन)।

संवेगों के संगम से जनित संवेदनाएं, और संवेदनाओं के संगम से जनित अनुभव होता है। चेतना में अनुभूति और अवचेतन में स्मृति संकलन होता है। स्मृति से स्वतःस्फूर्त संवेदनओं की पुनः अनुभूति होती है। संवेदनाओं की सामुहिक अनुभूति, ज्ञान और स्मृति का विश्लेषण और विवेचन ही चितंन-मनन होता है, और हमारे सोच और विचार का आधार होता है।

चिंतन, मनन, सोच, विचार, विवेचन आदि के लिए संवेदनाओं का संगम स्थल मस्तिष्क का अग्रभाग – फ्रंटल लोब होता है। ध्वनि, प्रकाश और गंध जनित सेवेदनाओं का संगम स्थल टेम्पोरल लोब होता है। फ्रंटल, पेराइटल, ओक्सिपीटल और टेम्पोरल लोब के संगम स्थल (एसोसियेशन एरिया) में प्रयाग, उज्जेन, हरिद्वार और नासिक की तरह ही संवेदनाओं का कुम्भ मेला जैसा लगता है।

तंत्रिका तंत्र के चक्रों में प्रवाह-रत, बाहर से आये या स्मृति से स्वतःस्फूर्त, संवेगों का बोध ही चेतना है, चिंतन, मनन, सोच और विचार हैं। विभिन्न न्यूरोट्रांसमीटर्स (न्यूरोरसायन) द्वारा उद्वेलित तंत्रिकातंत्र के चक्रो में प्रवाहित आवेग ही मस्तिष्क की कार्यविधि होती है। यही ब्रेन और माइन्ड, मस्तिष्क और चेतना का आधार है।

तज तीरथ हरि राधिका,
तन दुति कर अनुराग
जिहिं बृज केली निकुंज में,
पग पग होत प्रयाग। ❑

❑

धनंजय राय

कैसे एक छोटे से देश की छोटी सी नगरपालिका पर्यावरण संरक्षण का विश्व को रास्ता दिखा सकती है, उसे लेखक रेखांकित कर रहा है। सं.

पेरू की एक नगरपालिका ने विश्व को दिखाई राह

❑

हाल ही में पेरु की सातिपो नगरपालिका ने देशी डंक रहित मेलीपोनिनी जनजाति की मधुमक्खियों के संरक्षण के लिए एक बहुत ही व्यावहारिक और दूरदर्शी कानून पारित किया हैख नगरपालिका ने इन अमेजोनियन डंक रहित मधुमक्खियों को विशिष्ट अधिकार प्रदान किये हैं, जो इन मधुमक्खियों को अस्तित्व के अंतर्निहित अधिकारों के साथ कानूनी संस्था के रूप में मान्यता देते हैं। सातिपो नगरपालिका का अध्यादेश बहुत ही तार्किक तरीके से तथ्यों को स्थापित करता है।

सोच यह है कि पुराने वृक्षों के तनों में स्थायी और जटिल कालोनियों में निवास करने वाले ये 'यूसोशल' कीट, अमेज़न के वर्षावनों के

परिस्थितिकीय स्वास्थ्य की आधारशिला है। ये मधुमक्खियां अमेज़न के तीन चौथाई से भी अधिक वनस्पतियों के परागण के लिए उत्तरदायी मानी जाती है। इनके बिना वर्षावन की पुनरुत्पादन क्षमता गंभीर रूप से प्रभावित हो सकती है।

इनके शहद में पायी जाने वाली उच्च नमी और कम पीएच मान, शहद को एंटी वैक्टीरियल और एंटी इंफ्लेमेटरी बनाती है। यह शहद नेत्र रोगों के उपचार में भी काम में ली जाती है।

इस अध्यादेश में इन कीटों के पर्यावरणीय महत्व के साथ-साथ स्वदेशी समुदायों को जोड़ कर उनके सांस्कृतिक और आर्थिक महत्व पर भी प्रकाश डाला गया है।

अध्यादेश में इन सुक्ष्म जीवों को अस्तित्व का अधिकार, प्रदूषण मुक्त आवास, पारिस्थितिक भूमिका निर्वहन और कानूनी प्रतिनिधित्व जैसे मौलिक अधिकार दिये गए हैं।

अस्तित्व के अधिकार के तहत जहां उन्हें अपना अस्तित्व एवं अपनी आबादी बनाए रखने का अधिकार प्राप्त होगा वहीं आवास के मामले में वह प्रदूषण एवं आग से मुक्त आवास के अधिकारी होंगे।

पारिस्थितिक भूमिका के अधिकार के अंतर्गत इन सुक्ष्म जीवों को अपनी प्राकृतिक भूमिका निभाते हुये जैविक चक्रों को पुनर्जीवित करने का अधिकार प्राप्त होगा।

कानूनी प्रतिनिधित्व के अधिकार की बात करें तो उक्त अधिकारों के उल्लंघन के मामले में किसी व्यक्ति, समूह या विशेषज्ञों द्वारा मधुमक्खियों के हित में मुकदमा करने का भी अधिकार प्राप्त होगा।

वैश्विक पटल पर अपने तरीके का यह पहला अध्यादेश है जिसमें किसी कीट को विधिक व्यक्ति (लीगल पर्सन) के रूप में मान्यता दी गयी है। सातिपो के लोगों द्वारा लिया गया यह फैसला जितना उत्साहित करने वाला है उससे भी उत्साहजनक है सूक्ष्म जीवों के प्रति स्वाभाविक संवेदना, पर्यावरण में उनकी भूमिका की स्वीकृति और टिकाऊ विकास की दिशा में एक स्थायी पहल की दूरदर्शिता।

वैसे तो ये फैसला केवल मेलीपोनिनी जनजाति के मधुमक्खियों पर केन्द्रित है लेकिन यह जीवन और प्रकृति के परस्पर और पूरक सम्बन्ध को समझने के विमर्श को एक मजबूत और समसामयिक आधार प्रदान करता है तथा हमें यह सोचने के लिए प्रेरित करता है कि दुनिया के लगभग सभी देशों के संविधान को व्यक्ति केन्द्रित के बजाय प्रकृति केन्द्रित नजरिया देने की जरुरत हैख एक ऐसा नज़रिया जिसमे केवल व्यक्ति नहीं बल्कि पेड़, पोधे, जीव, जंतु, कीट पतंग भी अपने अस्तित्व का अधिकार रखते हों।

सातिपो नगरपालिका की सूक्ष्म जीवों के संरक्षण की ये कानूनी व्याख्या, यह दिशा देती है कि हम लोकतंत्र (डेमोक्रेसी) से पारितंत्र (इकोक्रेसी) की तरफ बढ़ के दुनिया को जलवायु असंतुलन के संकट से बचा सकें।

इस अध्यादेश का प्रकृति केन्द्रित नज़रिया हमारी संवेदना और प्रगतिशीलता का परिचायक है। लेकिन इस प्रगतिशील संविधान को जानने, मानने और जीने का सारा दारोमदार व्यक्ति के ऊपर है। अर्थात कानूनी प्राविधानों के अनुसार आचरण करना मानव समाज की ही जिम्मेदारी हैख अगर एक छोटा सा नगर सातिपो यह जिम्मेदारी ले सकता है तो समूचा विश्व क्यों नहीं?❑

हमारी धरोहर – हमारे बुजुर्ग

❑

❑

रणजीत सिंह कूमट

भारतीय प्रशासनिक सेवा के पूर्व अधिकारी तथा महावीर इंटरनेशनल, जयपुर के पूर्व अंतरराष्ट्रीय अध्यक्ष

मौजूदा समय में उभर रही गंभीर मानवीय और सामाजिक समस्या की ओर ध्यान आकर्षित कर रहे हैं। सं.

वृद्धाश्रम में रह रहे बुजुर्गों की हालत देख कर तरस आता है कि क्या उन्होंने ये दिन देखने के लिए बच्चों को पला-पोसा और बड़ा किया। बच्चे बड़े आराम से माता पिता को वृद्धाश्रम में भेज कर देश या विदेश में आराम का जीवन जीते हैं। अनेक तो देश में रहते हुए भी माता पिता से अलग रह रहे हैं और उनका खर्चा भी वहन नहीं करते। ऐसे अनेक मामले हैं जहां बच्चे आराम की जिंदगी बिता रहे हैं और माता-पिता दाने-दाने को तरस रहें हैं। यदि जायदाद थी तो वह बच्चों के नाम कर दी और बच्चों ने सम्पत्ति पर अधिकार कर माता पिता को बेघर कर दिया। इस दयनीय दशा के लिए माता-पिता भी जिम्मेदार हैं और बच्चे भी।

संतान का मूल कर्तव्य है कि वे अपने माता पिता का पूरा ख्याल रखें, उनके स्वास्थ्य का ध्यान रखें और आवश्यक चिकित्सा कराएं। उनका सम्मान और उनकी सेवा संतान का मूल कर्तव्य है। माता पिता न केवल भोजन और चिकित्सा के अधिकारी हैं, वे प्यार और आदर के भी अधिकारी हैं। बुजुर्गों को अपने भावी जीवन के लिए सावधान होना चाहिए। वे मान कर न चलें कि उनके बच्चे उनकी देख-भल करेंगे। यदि करते हैं तो अहोभाग्य परन्तु न करें तो स्वयं की देखभाल करने के लिए तत्पर रहना चाहिए। जीवन की अपनी कमाई, बचत व सम्पत्ति को संभाल कर रखें, सुनियोजित करें ताकि मासिक आमदनी में कमी न आये। यदि पेंशन मिलती है तो स्वयं रखें और स्वयं खर्च करें। उसे किसी के हाथ में न दें। यदि पति-पत्नी दोनों हैं तो पेंशन खाता संयुक्त बनाए ताकि एक की अनुपस्थिति में दूसरा उपयोग में ले सके और किसी अनहोनी होने पर खाते के संचालन में परेशानी न आये। खाते में नामांकन (नॉमिनेशन) अवश्य कराएं अन्यथा खाते से पैसा प्राप्त करने में बहुत परेशानी होती है। यदि कार्य ऐसा है जिसमें निश्चित पेंशन नहीं है तो समय रहते पेंशन योजना में नियोजन करें ताकि भविष्य में जब नौकरी या व्यवसाय न रहे तो भी पेंशन मिलती रहे। आजकल ऐसी बीमा योजनायें उपलब्ध हैं जो अभी किश्त भरने पर बुढ़ापे में पेंशन सुनिश्चित करती

हैं। अपनी सम्पति को अपने जीते जी किसी के नाम हस्तांतरित न करें। वसीयत जरूर बना कर रखें पर सम्पति का अधिकार हस्तांतरित नहीं करें। संपत्ति पर पहला अधिकार आपके जीवन-साथी का होना चाहिए और उसके बाद संतान या अन्य का होना चाहिए। अपने जीवन साथी के लिए उचित व्यवस्था करनी चाहिए और अपने संतान के भरोसे नहीं छोड़ना चाहिए। इसका यह अर्थ नहीं है कि संतान पर विश्वास न करें। विश्वास होते हुए भी कुछ अधिकार अपने पास रखने चाहिए जो वक्त पर काम आये।

बुजुर्गों के प्रति संतान की लापरवाही व उनके प्रति अत्याचार के मामलों को ध्यान में रखते हुए सरकार ने कुछ कानून बनायें हैं जो बजुर्गों को अधिकार देते हैं और जरुरत पड़ने पर उनका उपयोग करना आवश्यक हो जाता है। भारत सरकार ने बुजुर्गों के लिए माता पिता और वरिष्ठ नागरिकों का भरण-पोषण तथा कल्याण अधिनियम, 2007 कानून पास किया है। इस अधिनियम की धारा 4 में संतान का माता-पिता के प्रति कर्तव्य का उल्लेख है और इसके अनुसार वरिष्ठ नागरिक जो 60 वर्ष से अधिक उम्र के हैं और यदि उनके पास अपनी आय का कोई साधन नहीं है तो अपनी सन्तान (जैविक, दत्तक, सौतेले-बेटा, बेटी और पौत्र) से भरण-पोषण के लिए आर्थिक मदद पाने के हक़दार हैं। भरण-पोषण में भोजन, वस्त्र, रहने का स्थान तथा दवा खर्च शामिल है। रकम इतनी हो कि वे सामान्य इज्जत वाला जीवन जी सकें।

इस कानून के तहत हर जिले में एक ट्रिब्यूनल की स्थापना की गई है जिससे शिकायत करके भरण-पोषण का आदेश प्राप्त किया जा सकता है। अधिकांश में उपखंड अधिकारी को इसके लिए प्राधिकृत किया गया है। जिले में उपलब्ध सामाजिक न्याय अधिकारी से सहायता ली जा सकती है। इसमें किसी को वकील को करने की आवश्यकता नहीं है। साठ साल का कोई भी वरिष्ठ नागरिक अपनी खुद की, दत्तक और सौतेली संतान से भरण-पोषण के लिए ट्रिब्यूनल में प्रार्थना पत्र लगा सकता है और ट्रिब्यूनल जो आदेश देती है उसकी पालना न करना दंडनीय अपराध है और उनको जुर्माने के अतिरिक्त जेल की सजा भी दी जा सकती है।

अधिनियम में राज्यों को यह भी निर्देश है कि राज्य सरकार हर जिले में वृद्धाश्रम स्थापित करें ताकि वरिष्ठ जनों का ख्याल रखा जा सके। कई राज्यों में वृद्धाश्रम कायम हुए हैं और कुछ गैर सरकारी संस्थान अपने प्रयास से भी वृद्धाश्रम चला रहे हैं। वहां भी वृद्ध जनों को यह अपेक्षा रहती है कि उनकी संतान या रिश्तेदार यथा समय मिलने आएं।

कुछ अनुभव ऐसे आये हैं जिनमें माता-पिता अपनी संतान के खिलाफ अर्जी लगाने या उस अर्जी पर हस्ताक्षर भी करने को तैयार नहीं होते हैं। जहां माता-पिता स्वयं प्रार्थना पत्र देने को तैयार नहीं हैं वहां तो कोई भी सहायता नहीं कर सकता। स्वयं की सहायता खुद को ही करनी पड़ेगी।

बुजुर्ग हमारी धरोहर हैं। हर संतान का कर्तव्य है कि वह अपने माता-पिता, दादा-दादी आदि वृद्ध जनों का पूरा ध्यान रखे, उनकी उचित देखभाल करे, इलाज की आवश्यकता हो तो वह करावे तथा उनका मानसिक संतुलन भी सही रहे इसके लिए उनके साथ समय बिताए, बात करे और कहीं घूमने भी ले जाए। उनको घर में आदर और सम्मान मिले इसका पूरा ध्यान रखा जाए। यदि किसी परिस्थिति में कोई वृद्ध जन की देखभाल नहीं हो रही है तो कानून के तहत उनकी सहायता कर भरण-पोषण दिलाए।❑

गांधी ने राजनीति को आध्यात्मिक बनाया: टाक

❑

जैसलमेर जिला खादी ग्रामोदय परिषद की ओर से अपने संस्थापक एवं सर्वोदयी नेता भगवान दास माहेश्वरी की स्मृति में प्रतिवर्ष आयोजित की जाने वाली व्याख्यानमाला के अंतर्गत इस साल 21 फरवरी को राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति, जयपुर एवं गांधी भवन जोधपुर के उपाध्यक्ष डॉ. ओ.पी. टाक ने 'गाँधी का अध्यात्म' विषय पर व्याख्यान दिया। सरल-सुबोध शैली में राष्ट्रपिता के अध्यात्म की अनेक छवियां प्रस्तुत करते हुए टाक ने कहा कि जहां धर्म की सीमा समाप्त हो जाती है तब वहां से अध्यात्म प्रारंभ होता है। अध्यात्म दर्शन नहीं अनुभव है। यह मनुष्य की सबसे ऊंची चेतना का नाम है। सत्य, प्रेम और करुणा से भरा होना ही सच्चा आध्यात्मिक होना है। अध्यात्म हर उस बेदी को तोड़ता है जो हमें एक-दूसरे से अलग करती है। हालांकि अध्यात्म की की बातएं शास्त्रों की शोभा मानी जाती है लेकिन संत महापुरुष उसे जीवन में उतारने के सूत्र बता जाते हैं।

गांधी जी ने सत्य के साथ अध्यात्म को जोड़ कर उसे व्यावहारिक बना दिया। सत्य पर टिके रहना, उसे जीना और अपनी कथनी और करनी में एकता रखना गांधी का अध्यात्म था।

गांधी ने अध्यात्म शास्त्र से नहीं लोक से ग्रहण किया था और देश सेवा को ही सबसे बड़ी साधना माना और संसार के प्राणी मात्र के साथ तादात्म्य स्थापित करने की अभिलाषाव्यक्त की। गांधी ने जीवन के हर पहलू, यहां तक कि राजनीति का भी आध्यात्मिकरण किया। डॉ. टाक ने कहा कि गांधी साधारण मनुष्य की तरह लंबे अरसे तक धर्म और अध्यात्म से जुड़े प्रश्नों को लेकर भ्रम व भटकाव की स्थिति में रहे लेकिन प्रसिद्ध जैन संत-योगी श्रीमद् राजचंद्र के साथ संवाद सम्पर्क ने उनकी अनेक जिज्ञासाओं का सम्यक् समाधान दिया।

जब गांधी ने सत्य को ईश्वर मान लिया तो उन्हें जैसे जीवन का पथ मिल गया, धर्म की दीवारें ढह गई और मन में शांति छा गई। सबसे बड़ी बात यह है कि कि गांधी को अपना धार्मिक जीवन जीने के लिए न तो ध्यान समाधि

की जरूरत पड़ी, न पूजा अनुष्ठान की, और न कोई प्रतीक चि धारण करने की आवश्यकता पड़ी। वे सत्य के प्रेमी क्या बने मनुष्य प्रेमी, भगवत प्रेमी और प्रकृति प्रेमी भी बन गए और एक निर्भयता उनकी जीवन शैली बन गई।

डॉ. टाक ने कहा कि गांधी जितने हिन्दू धर्म की गहराई में उतरते गए उनकी धार्मिक आस्था मजबूत होती गई। रमण महर्षि ने सगर्व माना कि गांधी और उनकी शक्ति का स्रोत एक ही है। इसी तरह स्वामी योगानंद और स्वामी तुरीयानंद ने भी गांधी के अध्यात्म को आत्मा की पुकार कहा।

डॉ. टाक ने कहा कि प्रार्थना, गीता, मौन और रामनाम गांधी के अध्यात्म के आधारस्तंभ थे।

कार्यक्रम की अध्यक्षता यूआई टी के पूर्व अध्यक्ष उम्मेद सिंह तंवर ने की। परिषद् के अध्यक्ष सवाई सिंह ने स्वागत भाषण दिया। कार्यक्रम में पूर्व विधायक रूपाराम सहित अच्छी संख्या में सामाजिक कार्यकर्ता, शिक्षाविद् और युवाजन उपस्थित थे, जो कार्यक्रम समाप्ति के बाद भी विषय के अनेक पहलूओं पर सरस चर्चा करते रहे।

– राजूराम प्रजापत,
जिला खादी ग्रामोदय परिषद,
जैसलमेर के मंत्री

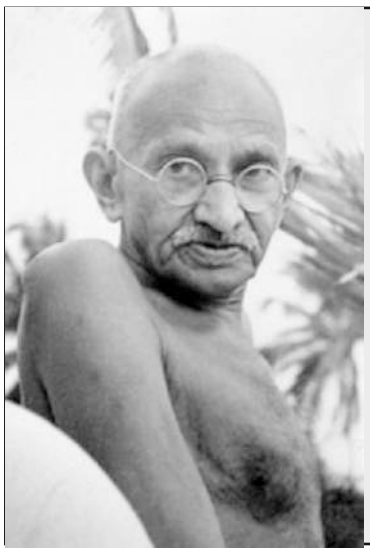

बापू ने बताये सात निषेध

❑

महात्मा गांधी के जीवन और शिक्षा के लिये सात प्रमुख मूल्य, जिन्हें उनके द्वारा प्रतिपादित सामाजिक पापों के साथ निषेध भी माना जाता है :

1.**बिना काम के धन:** मेहनत के बिना धन कमाना गलत।

2.**विवेकहीन आनंद:** ऐसा आनंद जो विवेक या नैतिकता को नष्ट करे।

3.**चरित्रहीन ज्ञान:** बिना चरित्र के ज्ञान खतरनाक है।

4.**नैतिकता के बिना व्यापार:** अनैतिक व्यापार समाज के लिये हानिकारक है।

5.**मानवता के के बिना विज्ञान:** मानवता रहित विगाएं विनाशकारी है।

6.**बलिदान रहित धर्म:** त्याग या सेवा के बिना धर्म केवल दिखावा है।

7.**सिद्धांतहीन राजनीति:** बिना सिद्धांत की राजनीति राष्ट्र को कमजोर करती है।❑

अध्ययन

रंग-बिरंगे वस्त्र ठीक नहीं

❑

❑

डॉ. विवेक एस. अग्रवाल

तड़क-भड़क वाले चमकीले कपड़ों का चलन तेजी से बढ़ रहा है, विशेषकर युवा पीढ़ी में। बच्चों के लिए चयन किए जाने वाले कपड़ों के चलन पर गौर किया जाये तो तड़क-भड़क वाले कपड़े ही बहुतायत से खरीदे जाते हैं। लेकिन ऐसे कपड़े वातावरण और व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर अपना कितना असर छोड़ते हैं इसका शायद ही किसी को भान हो।

इसकी गंभीरता को समझने के लिए यह तथ्य ही काफी है कि यदि पॉलिस्टर कपड़े की एक ग्राम के दसवें हिस्से जितनी मात्रा को भी 12 दिन तक सूरज की रोशनी दिखा दी जाए तो वह 14,000 से 47,000 तक प्लास्टिक के माइक्रो फाइबर वातावरण में छोड़ देते हैं। यदि यही कपड़ा सूर्य की रोशनी में शरीर पर रहे तो माइक्रो प्लास्टिक के यह कण त्वचा के छिद्रों के माध्यम से शरीर में प्रवेश कर जाते हैं और कालांतर में रक्त में घुल कर शरीर के हर अंग प्रत्यंग तक पहुंच जाते हैं। बच्चों की कोमल त्वचा और निरन्तर स्पर्श इसमें आग में घी का काम करते हैं। बच्चो में प्रतिरोधक क्षमता के कम होने से उनके शरीर में माइक्रो फाइबर का प्रभाव अधिक शीघ्रता से फैलाता है। वैज्ञानिक रूप से यह भी एक स्थापित तथ्य है कि कपड़ों में प्रयुक्त रसायन के शरीर में रिसाव से तंत्रिका तंत्र (न्यूरोलॉजिकल सिस्टम) के विकास में बाधा आती है एवं अनेक गंभीर बीमारियों की आशंका बढ़ जाती है।

प्लास्टिक में पाए जाने वाले रसायन, जैसे बिस्फेनॉल, फ़थलेट्स और अग्निरोधी तत्व, संज्ञानात्मक कमियों और विकासात्मक अक्षमताएं पैदा कर सकते हैं। जन्मपूर्व और प्रारंभिक बचपन में इनके संपर्क में आने से मस्तिष्क और तंत्रिका तंत्र का विकास प्रभावित हो सकता है, जिससे व्यवहार संबंधी समस्याएं उत्पन्न हो सकती हैं। इन तत्वों के प्रभाव से हार्मोन असंतुलन भी पाया गया है जो प्रजनन एवं अन्य क्रियाओं को प्रभावित करता है। गर्भावस्था के दौरान पहने जाने वाले कपड़े भी संतानोत्पत्ति पर गहरा असर छोड़ते हैं। इनसे उत्पन्न अवयव जन्मजात रोगों के साथ कैंसर जैसी बीमारी का कारण भी बन सकते हैं। अनुसंधान साक्षी हैं कि हृदय, फेफड़ों से लेकर कोई भी अंग प्लास्टिक की जद से बाहर नहीं है।

पहले बच्चों के लिए सूती एवं सफेद या हल्के रंगों वाले वस्त्रों का ही उपयोग होता था। नये ज़माने के फैशन ने न सिर्फ युवाओं, अपितु बच्चों की पोशाक में भी आमूलचूल परिवर्तन ला दिया है। इस बदलाव का असर तुरंत तो महसूस नहीं किया जा सकता किंतु भविष्य के लिए यह निश्चित रूप से नए संकट का आगाज कर रहा है।

एक अध्ययन के अनुसार यह जरूरी नहीं है की पॉलिस्टर, नायलॉन या एक्रिलिक से बने कपड़ों को धोने अथवा रगड़ने से ही माइक्रोप्लास्टिक पैदा होती हो। इस प्रकार के कपड़ों में मात्र सूर्य के प्रकाश से प्राप्त अल्ट्रा वायलेट किरणों के द्वारा प्लास्टिक का विघटन हो जाता है ओर वह शनैः शनैः वातावरण को प्रदुषित करता है। अध्ययन के अनुसार बैंगनी (पर्पल) रंग के कपड़े सबसे ज्यादा माइक्रो फाइबर विघटित करते हैं। हरे, पीले ओर नीले कपड़े भी कमोबेश प्लास्टिक के कणों का प्रचुरता से सृजन करते हैं।

यह जरूरी नहीं है के कपड़ों की बहुत बड़ी मात्रा पानी अथवा सूर्य की रोशनी के संपर्क में आए, छोटी सी मात्रा भी समय के साथ विघटित हो प्रदूषण का बड़ा कारण बन जाती है। जितना गहरा रंग उतना ज्यादा जल्दी उसका विघटन। यह भी एक तथ्य है कि बैंगनी एवं हरे कपड़ों में सबसे ज्यादा अल्ट्रा वायलेट किरणों का अवशोषण होता है। इस अवशोषण से उनसे प्लास्टिक की रासायनिक उम्र में वृद्धि होती है जो भविष्य में हानि का सबब बन जाती है।

इसलिये व्यक्तिगत स्तर पर वस्त्रों विशेषकर उनके रंग और कपड़े के प्रकार का उपयुक्त चयन महत्वपूर्ण हो जाता है। इसलिए हर स्तर पर सावधानी रखनी आवश्यक है। ❑

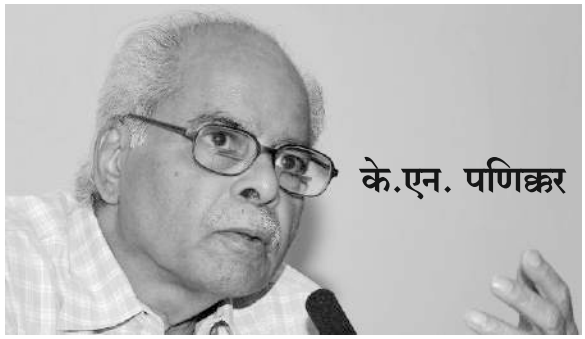

इतिहास लेखन युग का अवसान

❑

❑

डॉ. लता व्यास

इतिहासकार के.एन. पणिक्कर का निधन इतिहास लेखन के एक युग का अवसान है। उन्हें इतिहास की उच्च शिक्षा की शिक्षिका याद कर रही है। सं.

मॉडर्न हिस्ट्री के भारत के सबसे बड़े स्कॉलरों में एक माने जाने वाले इतिहासकार के.एन. पणिक्कर 9 मार्च को तिरुवनंतपुरम में निधन हो गया। वे 89 साल के थे।

सेंट्रल केरल के मंदिरों के शहर गुरुवायूर में 1936 में जन्मे पणिक्कर ने विक्टोरिया कॉलेज, पलक्कड़ से ग्रेजुएशन किया और राजस्थान यूनिवर्सिटी से पोस्ट-ग्रेजुएशन और पीचड़ी पूरी की। उनकी डॉक्टरेट थीसिस भारत में ब्रिटिश डिप्लोमेसी पर थी। जयपुर में ही उनकी मुलाकात उनकी जीवन साथी उषा भार्गव से हुई। 1972 में जवाहरलाल नेहरू विश्वविद्यालय में हिस्ट्री के प्रोफेसर के तौर पर शामिल होने से पहले उन्होंने राजस्थान यूनिवर्सिटी और इंडियन इंस्टीट्यूट ऑफ़ पब्लिक एडमिनिस्ट्रेशन में पढ़ाया।

पणिक्कर इतिहासकारों के उस समुदाय के एक जाने-माने सदस्य थे जो सही और असली इतिहास लिखने के लिए समर्पित थे। लेकिन उस समुदाय के अंदर भी, वह कई तरह से अलग थे। ऐसे समय में जब इतिहास लिखने में आर्थिक और राजनीतिक पहलुओं का दबदबा था, पणिक्कर ने संस्कृति के महत्व पर ज़ोर दिया। पणिक्कर ने ऐतिहासिक घटनाओं को समझने में संस्कृति को एक ज़रूरी चीज़ के तौर पर पेश किया। उनके लिये संस्कृति एक मेंटल यूनिवर्स थी जो लोगों के विचारों को उनके कामों से जोड़ती है।

पणिक्कर ने अपने विद्यार्थियों को सिखाया कि सभी बड़े पॉलिटिकल मूवमेंट से पहले कल्चरल मूवमेंट हुए। किसी भी बड़ी राजनीतिक और आर्थिक उथल-पुथल को खंगालिए, आपको वहां संस्कृति के निशान मिलेंगे। मार्क्सवादी होने के बावजूद, उनका मानना था कि विचार की दुनिया सिर्फ़ भौतिक ज़िंदगी का हिस्सा नहीं होती है। विचारों की अपनी आज़ादी होती है और उनकी अपनी ज़िंदगी होती है।

उन्होंने विद्यार्थियों को क्रिटिकली सोचने के लिए तथा अपने विषय को गहराई से देखने के लिए प्रेरित किया। उन्होंने किसी से अपने सोचने के तरीके को फॉलो करने के लिए नहीं कहा।

पणिक्कर विचारों के इतिहासकार थे जिन्होंने भारतीय राष्ट्रवाद और 19वीं और 20वीं सदी के सामाजिक सुधार आंदोलनों की कई उलझी हुई बातों को सुलझाया। वे एक न्यायपूर्ण और बराबरी वाली सामाजिक व्यवस्था के पक्के हिमायती थे और हर तरह की सांप्रदायिकता का डटकर विरोध करते थे।

1980 के दशक से, पणिक्कर दिल्ली में सामाजिक संगठनों के साथ सक्रिय रूप से जुड़ना शुरू हुए। वह 1980 के दशक के आखिर में छह साल तक राष्ट्रीय राजधानी में मलयाली लोगों द्वारा स्थापित एक बड़े लेफ्ट प्लेटफॉर्म, जनसंस्कृति के प्रेसिडेंट थे। वे सहमत नाम के पॉलिटिको-कल्चरल ग्रुप से जुड़े रहे, और बाद में उन्होंने अनहद नाम के एक्टिविस्ट संगठन को बनाने में मदद की। ❑

एक विलक्षण विद्वान का जाना...

हिंदी, अंग्रेजी, उर्दू और संस्कृत के विलक्षण विद्वान डॉक्टर नरेंद्र शर्मा 'कुसुम' पांच मार्च को जयपुर में नश्वर देह त्याग गए।

वे अपने अंतिम समय तक प्रतिदिन भोर होने से पहले कविताएं लिखकर मित्रों को व्हाट्सएप्प संदेशे भेजे। 2 फरवरी को सुबह पांच बजे उन्होंने भोर की वाणी में लिखा: प्रियवर, मेरे स्वास्थ्य के प्रति आपकी शुभ कामनाएं पा कर अन्तस गीला और आंखें नम हो गयीं। भावों का हिमखंड ऐसे क्षणों में पिघल ही जाता है। यह प्रेम और आदर का संसार न होता तो एक बीहड़ ही होता। भोर की कवि वाणी ने हम सबको पारस्परिक प्रेम की अटूट रज्जु से बांध रखा है। यह रज्जु कभी नहीं टूटेगी। वाणी आपकी ज्ञान पिपासा को यथासंभव परितृप्त करती रहेगी! शुभमस्तु।

वे अब हमारे बीच नहीं है किन्तु उनसे प्रेम की अटूट रज्जु हमेशा बनी रहेगी। डॉ. कुसुम ने अंग्रेजी के प्रसिद्ध कवियों का हिन्दी में काव्यानुवाद व हिन्दी भाषा के कवियों का अंग्रेजी में काव्यानुवाद करने का कालजयी कार्य किया। ❑

RS-CIT
एक परिपूर्ण कंप्यूटर कोर्स !

RS-CIT एक विस्तृत बेसिक कंप्यूटर कोर्स है जिसकी मदद से कंप्यूटर के आवश्य कौशल सीख कर कंप्यूटर पर कार्य करने में दक्षता हासिल की जा सकती है एवं विभिन्न डिजिटल सुविधाओं के उपयोग के बारे में जानकारी प्राप्त की जा सकती है

RS-CIT कंप्यूटर कोर्स ही क्यों ?

ई-लर्निंग पर आधारित, ऑडियो-विडियो कंटेंट तथा चरणबद्ध असेसमेंट
राज्य सरकार की विभिन्न सरकारी नौकरियों में एक पात्रता ।
शहरी एवं ग्रामीण क्षेत्रों में लगभग 6500 ज्ञान केंद्र ।
वर्धमान महावीर खुला विश्वविद्यालय कोटा द्वारा परीक्षा एवं प्रमाण पत्र ।

अन्य कोर्सेज

- Financial Accounting
- Spoken English & Personality Development
- Desktop Publishing
- Digital Marketing
- Advanced Excel
- Cyber Security
- Business Correspondence

Rajasthan Knowledge Corporation Limited
(A Public Limited Company Promoted by Govt. of Rajasthan)

नजदीकी ज्ञान केंद्र के लिए www.rkcl.in पर विजिट करें
या 9571237334 पर WhatsApp करें

स्वत्त्वाधिकारी राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति द्वारा क्लासीफाइड प्रिण्टर्स, जयपुर में मुद्रित तथा 7-ए, झालाना संस्थान क्षेत्र, जयपुर-302004 से प्रकाशित। संपादक- राजेन्द्र बोड़ा

अनौपचारिका: पृष्ठ-28, अप्रेल, 2026 रजिस्ट्रार ऑव न्यूज पेपर, नयी दिल्ली के द्वारा पंजीकृत मासिक पत्रिका RNI 43602/77 ISSN No.2581-981x

सहयोग राशि के लिए
बैंक विवरण

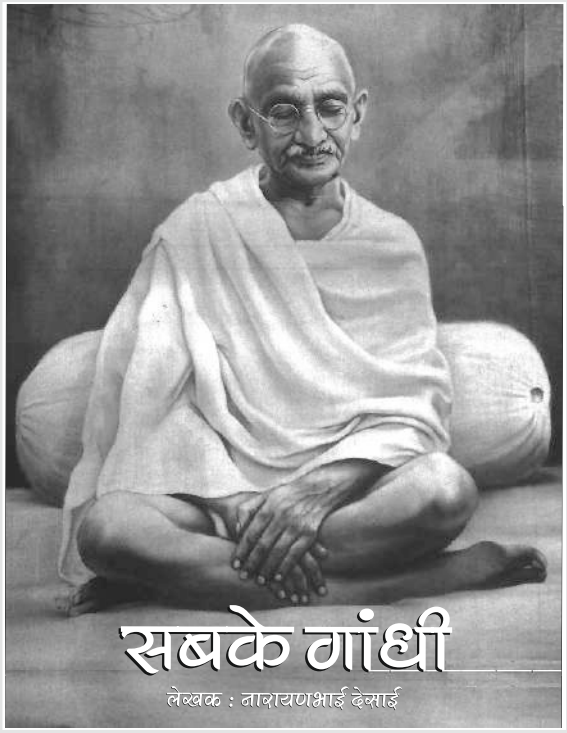

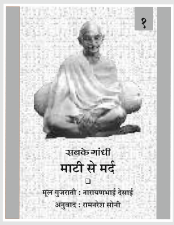

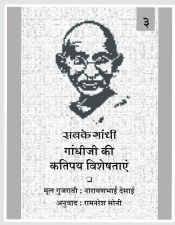

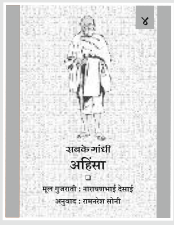

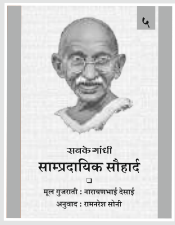

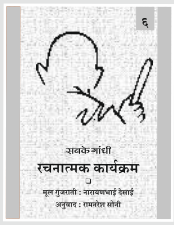

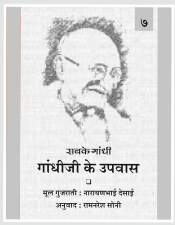

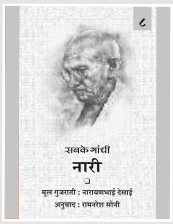

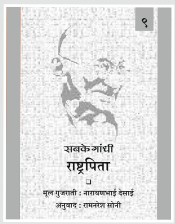

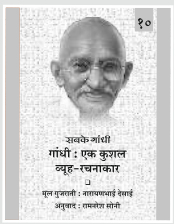

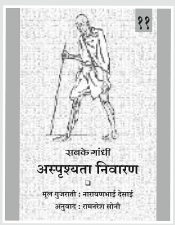

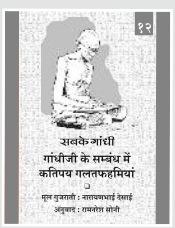

BANK OF BARODA
Rajasthan Adult Education Association
Branch Name : IDS Ext. Jhalana Jaipur
I.F.S.C. Code : BARB0EXTNEH
(Fifth Character is zero)
Micr Code : 302012030
Acct.No. : 98150100002077

सबके गांधी

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

राजस्थान प्रौढ़ शिक्षण समिति
7—ए, झालाना संस्थान क्षेत्र,
जयपुर—302004

12 पुस्तकों के एक सैट की सहयोग राशि रुपये 500/– मात्र डाक खर्च रुपये 75/– अलग से देय होगा।